उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत
उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किये बिना विश्राम मत लो

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—१२ १९९३—नवम्बर अंक—११

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

सम्पादक :
डॉ० केदारनाथ लाभ

सहायक सम्पादक
शिशिर कुमार मल्लिक

सम्पादकीय कार्यालय :
रामकृष्ण निलयम्
जयप्रकाश नगर,
छपरा—८४१३०१
(बिहार)
फोन। ०६१५२-४२६३९

सहयोग राशि

आजीवन सदस्य—	५०० रु०
वार्षिक—	३० रु०
रजिस्टर्ड डाक से—	४५ रु०
एक प्रति—	४ रु०

रचनाएँ एवं सहयोग-राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

* पहले हृदयमन्दिर में भगवान् को प्रतिष्ठित कर लो, उनके दर्शन कर लो, बाद में इच्छा हो तो लेक्चर देना। संसार में आसक्ति के रहते और विवेक-वैराग्य के न रहते सिर्फ 'ब्रह्म ब्रह्म' कहने से क्या होनेवाला ? मन्दिर में देवता तो हैं नहीं. व्यर्थ शंख फूँकने से क्या होगा ?

* यदि तुम विवेक-विचार के साथ संसार-धर्म का पालन करो तो ऐसे संसार के लिए आवश्यक धन कमा सकते हो, पर ध्यान रहे कि तुम्हारी कमाई ईमानदारी की हो, क्योंकि तुम्हारा उद्देश्य धन कमाना नहीं है, ईश्वर की सेवा करना ही तुम्हारा उद्देश्य है, ईश्वर की सेवा के लिए धन कमाने में कोई दोष नहीं।

* जो साधु दवाई देता हो, झाड़-फूंक करता हो, पैसे लेता हो और भभूत रमाकर या माला-तिलक आदि बाह्य चिह्नों का आडम्बर रचकर मानो 'साईन बोर्ड' लगाकर लोगों के सामने अपनी साधुगिरी का प्रदर्शन करता हो, उस पर कभी विश्वास न करना।

* जिस लड़के को जो भोजन रुचता और पचता है, माँ उसके लिए वही भोजन पकाती है। यदि माँ के पाँच बच्चे हों और घर में एक बड़ी मछली आए तो माँ उसमें से एक के लिए पुलाव बनाएगी, एक के लिए रसेदार सब्जी बनाएगी, तो एक को सूखी सब्जी बना देगी। जिसकी पाचनशक्ति जैसी हो, उसको उसीके अनुसार भोजन मिलता है। (इसी प्रकार विभिन्न साधकों के लिए विभिन्न प्रतीकों तथा अनुष्ठानों की व्यवस्था है।)

श्रीरामकृष्णविषयक भजन

स्वामी वागीश्वरा

(शहाना—तीन ताल)

दुखिया माँ की कोख धन्य कर, धराधाम में उजियारी भर।
कहो कौन तुम बाल-रूप धर, आज पधारे दीनों के घर॥
भूतल में तुम अतुलनीय हो, दुखियों के परम आत्मीय हो।
देख धरा को शोकतप्त क्या, आए दुख से होकर कातर॥
क्या दुखियों को देने दर्शन, आए रूप छिपाकर भगवन्।
हँसते-रोते किसके कारण, क्या जग के सुख-दुःख देखकर॥
निरख रूप मैं बलि बलि जाऊँ, नैना पल भर फेर न पाऊँ।
हृदय-तापहारी, जी चाहे—बैठा लूँ तुमको निज उर पर॥

(धुन—कहरवा)

आया एक अनोखा मानुष, चलो देखने जायें रे।
(वह) विवेक-वैराग्य की झोलियाँ सदा रहे लटकाये रे॥
मुख से 'माँ-माँ' रटे निरंतर, प्राण त्यागने धाये रे।
(कह) 'ब्रह्ममही माँ! बीत गया दिन, दर्शन तो ना पायें' रे॥
अज्ञजनों को सरल वाक्य से धर्मतत्त्व सिखलाये रे।
(कह) 'जो काली है, वही कृष्ण है--नाम भेद दिखलाये रे॥
'अकुवा, वाटर, पानी, जल, वन एक नीर लहराये रे।
(वैसे) अल्ला, गॉड, ईश ये सब कुछ वही ब्रह्म कहलाये रे'॥
जाति-शील-कुल-मान-ज्ञान-धन उसे न बहला पाये रे।
(पर) देख सरल मन सभी भूल वह पागल प्रेम लुटाये रे॥
बाँहें फैला 'आओ आओ' कहकर पास बुलाये रे।
(नित) कृपामूर्ति धर राजे, सब की नैया पार लगाये रे॥

---

१. गिरीशचन्द्र घोष रचित 'दुखिनी ब्राह्मणी कोले' का भावानुवाद
२. देवेन्द्रनाथ मजुमदार रचित 'एसेछे नूतन मानुष' का भावानुवाद

श्रीरामकृष्ण की अंत्यलीला

—स्वामी प्रभानन्द
सहायक सचिव, रामकृष्ण मठ एवं मिशन
अनुवादक—डॉ० नन्दिता भार्गव

तेईस

आज शुक्रवार है, ३० अक्टूबर १८८५।

एक दिन गुरुवार अपने मित्र उपेन्द्र नाथ घोष को लेकर अतुल श्रीरामकृष्ण के पास आये। उपेन यह निश्चय करके आये थे कि वह श्रीरामकृष्ण से तीन प्रश्न पूछेंगे। उपेन्द्रनाथ, 'महाराज, ईश्वर साकार हैं या निराकार? और यदि दोनों है तो एक साथ इस प्रकार के दो सम्पूर्ण विपरीत भाव कैसे एक में रह सकते हैं?" श्रीरामकृष्ण ने उत्तर दिया, "वे (ईश्वर) साकार और निराकार दोनों हैं। जैसे जल और बर्फ।" उपेन ने कॉलेज में विज्ञान पढ़ा था, इसलिए श्रीरामकृष्ण देव का दृष्टान्त उसके मन के लायक हुआ और उसकी सहायता से वह अपने प्रश्न का ठीक-ठीक उत्तर पाकर आनन्दित हुआ। श्रीरामकृष्ण के उस एक उत्तर से ही उसके तीनों प्रश्न का समाधान हो गया। ठाकुर की अलौकिक शक्ति को देख दोनों ही मित्र मुग्ध हो कर चले गये।"

दिन के नौ बजे का समय होगा। मास्टर महाशय आये हैं श्रीरामकृष्ण की पीड़ा की खबर लेने। क्योंकि वे डाक्टर सरकार के घर जाकर पीड़ा की खबर देंगे।

मास्टर डाक्टर सरकार के घर आये हैं। रास्ते पर दुमंजले मकान के बैठक खाने का बरामदा है, वहाँ जाकर वे डाक्टर सरकार से मिले। डाक्टर साहब को ठाकुर की पीड़ा की खबर दी।

दोपहर का समय है। डाक्टर गाड़ी पर बैठे, साथ-साथ मास्टर भी। गाड़ी श्यामपुकुर की ओर जा रही है। गाड़ी कार्नवालिस स्ट्रीट पर आयी। डाक्टर सरकार ने डाक्टर प्रताप मजूमदार को गाड़ी में बिठा लिया। डाक्टर मजूमदार कल श्रीरामकृष्ण को देखने गये थे। वे तीनों श्यामापुकुर में श्रीरामकृष्ण के पास आ पहुँचे।

कल डाक्टर मजूमदार ने श्रीरामकृष्ण को भावावस्था में देखा था। वे इतने अस्वस्थ हैं फिर भी ईश्वरीय भावों का आवेश होता है।

श्रीरामकृष्ण (डाक्टर सरकार से)—कल जो भावावस्था हुई थी, उसमें मैंने तुम्हें देखा। देखा, ज्ञान का आकार है, परन्तु भीतर एक दम सूखा हुआ। आनन्द रस नहीं मिला। (प्रताप से) ये (डाक्टर सरकार) यदि एक बार आनन्द पा जायें तो अधः—उर्ध्व सब आनन्द से पूर्ण देखेंगे। फिर "मैं जो कुछ कहता हूँ वही ठीक है, और दूसरे जो कुछ कहते हैं वह ठीक नहीं, आदि बातें फिर ये बिलकुल ही न कहेंगे—और फिर इनको लट्ठमार बातें भी छूट जायेगी।" एकाएक श्रीरामकृष्ण भावाविष्ट हो गये। भावावेश में आप डाक्टर

सरकार से कह रहे हैं—महिम बाबू, तुम क्या हरदम रुपया कर रहे हो! बीबी-बीबी! मान-मान! ये सब इस समय छोड़कर एक चित्त हो ईश्वर में मन लगाओ और ईश्वर के आनन्द का उपभोग करो।"

श्रीरामकृष्ण ध्यान-योग की बातें विस्तार पूर्वक सुना रहे हैं। भक्तगण निर्वाक् होकर सुन रहे हैं। श्रीरामकृष्ण (डाक्टर सरकार से) एक बात तुमने बहुत अच्छी कही है। भावावस्था ईश्वर के साथ मन के संयोग से होती है, यह बात केवल तुमने ही कही और किसी ने नहीं कही।

"शिवनाथ ने कहा था, "अधिक ईश्वर-चिंतन करने पर मनुष्य का मस्तिष्क बिगड़ जाता है।" कहता है, संसार में जो चेतन-स्वरूप हैं, उनके चिंतन से अचेतन हो जाता है। जो बोधस्वरूप हैं, जिनके बोध से संसार को बोध हो रहा है, उनकी चिंता करके अबोध हो जाना!!

"और तुम्हारा साइन्स क्या कहता है? बस यही न कि इससे यह मिल जाय या उससे वह मिल जाय तो अमुक तैयार हो जाता है आदि आदि। इन सब बातों की चिन्ता करके—जड़ वस्तुओं में पकड़ तो मनुष्य के और भी बोधहीन हो जाने की सम्भावना रहती है।"

डाक्टर सरकार—"उन जड़ वस्तुओं में मनुष्य ईश्वर का दर्शन कर सकता है।"

मास्टर महाशय—"परन्तु मनुष्य में यह दर्शन और भी स्पष्ट हो सकता है, और महापुरुषों में और भी अधिक स्पष्ट। महापुरुषों में उनका प्रकाश अधिक है।

डाक्टर सरकार—हां, मनुष्य में दर्शन अवश्य हो सकता है।

श्रीरामकृष्ण—जीवंत चैतन्य से जड़ भी [illegible] हो रहे हैं—हाथ, पैर और शरीर हिल [illegible] उनके चितन्तन से क्या कोई कभी अचेतन [illegible] सकता है? लोग कहते हैं, "शरीर हिल रहा [illegible] परन्तु वे हिला रहे हैं, यह ज्ञान नहीं है। [illegible] कहते हैं, पानी से हाथ जल गया पर पानी से [illegible] कुछ नहीं जलता पानी के भीतर जो ताप है, [illegible] अग्नि है, उसी से हाथ जल गया।

डाक्टर सरकार उठे। अब विदा होंगे। श्रीरामकृष्ण भी उठकर खड़े हो गये। डाक्टर (श्रीरामकृष्ण को) अब आप खुद धुनिये के हाथ पड़ गये हैं, अब उसी से कहिये। यह मैं आप की कही हुई बात कह रहा हूँ। (लोगों पर कष्ट पड़ जाता है तब वे ईश्वर का स्मरण करते हैं

श्रीरामकृष्ण—और क्या कहूँगा?

डाक्टर सरकार—क्यों कहोगे क्यों नहीं हम आपकी गोद में है, उनकी गोद में खाते-पीते बीमारी होने पर उनसे नहीं कहेंगे तो किस कहेंगे?

श्रीरामकृष्ण—ठीक है, कभी-कभी कहता हूं परन्तु कहीं कुछ होता नहीं।

डाक्टर साहब—"और कहना भी क्यों, क्या वे जानते नहीं?

श्रीरामकृष्ण—(सहास्य)—एक मुसलमान नमाज पढ़ते समय "हो अल्ला, हो अल्ला," कहकर अजान दे रहा था। उससे एक आदमी ने कहा तू अल्ला को पुकार रहा है तो इतना चिल्लाता क्यों हैं? क्या तुझे नहीं मालूम कि उन्हें चींटी पैरों के नुपुर की भी आहट मिल जाती है?

जब उनमें मन लीन हो जाता है, तब मनुष्य ईश्वर को बहुत समीप देखता है। हृदय देखता है।

श्रीरामकृष्ण ने राजा और भागवत के पण्डित की कहानी सुनायी। फिर उन्होंने उस पण्डित की कहानी सुनायी जिसके पास हल और बैल दोनों ही थे। (वह पण्डित दिन-रात हल और बैल लिये व्यस्त रहता था। उसे काश्तकारी सम्हालनी पड़ती थी इसलिये भागवत सुनाने को उसे अवकाश नहीं मिलता था।) कहानियाँ सुनाने के बाद श्रीरामकृष्ण ने कहा, "परन्तु केवल पाण्डित्य से क्या होगा? पण्डित लोग जानते तो बहुत हैं—वेदों पुराणों और तंत्र की बातें। परन्तु कोरे पाण्डित्य से होता क्या है? विवेक और वैराग्य अगर किसी में हों तो उसकी बातें सुनी जा सकती हैं। पर जिसने संसार को ही सार समझ लिया है, उसकी बातों को सुनकर क्या होगा।

डाक्टर सरकार चले गये। श्रीरामकृष्ण के पास मास्टर महाशय बैठे हैं। एकान्त में बातचीत हो रही है। श्रीरामकृष्ण—"देखा, अब अधिक ध्यान नहीं करना पड़ता है। एक दम अखण्ड़ का बोध हो जाता है। अब केवल दर्शन होते हैं।"

श्रीरामकृष्ण बीच बीच में बात कर रहे हैं। श्रीरामकृष्ण—"क्या डाक्टर यहाँ की सब बातों को ग्रहण करता है? क्या उसमें कुछ परिवर्तन आया है? मास्टर महाशय—यह अमोघ बीज कहाँ जायगा किसी-न-किसी तरफ से कभी तो अंकुरित होगा ही।

सन्ध्या हो गयी है। नरेन्द्र अपने एल मित्र को साथ लेकर आये हैं। वे किरणमयी के लेखक हैं। उनका नाम है राजकृष्ण राय। श्रीरामकृष्ण के कहने पर राजकृष्ण राय ने अपनी पुस्तक के संबंध में बताया। लेखक कहते हैं कि राधाकृष्ण ही परब्रह्म हैं।

श्रीरामकृष्ण—"परन्तु उनके द्वारा सब कुछ सम्भव है। वे ही निराकार हैं और वे ही साकार। वे ही स्वराट् हैं और वे ही विराट्। वे ही ब्रह्म हैं और वे ही शक्ति। उनकी इति नहीं हो सकती—उनका अन्त नहीं है, उनमें सब कुछ सम्भव है।"[2]

नोट :—१. श्रीरामकृष्ण लीला प्रसंग—तीसरा खण्ड पृ० ३५६

२. श्रीरामकृष्ण वचनामृत—तीसरा खण्ड पृ० ४३०-४४७ २४वाँ परिच्छेद से उद्धृत (लिया गया है।)

'मैं अज, अविनाशी, आनन्दमय, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, नित्य, ज्योतिर्मय आत्मा हूँ'—दिन-रात यही चिन्तन करते रहो, जब तक कि यह भाव तुम्हारे जीवन का अविच्छेद्य अंग न बन जाय।

—स्वामी विवेकानन्द

स्वामी विवेकानन्द की भारत परिक्रमा एवं धर्म महासम्मेलन की तैयारी

—स्वामी विमलात्मानन्द
अनुवादक—ब्रह्मचारी गौरी शंकर
बेलुड़मठ

अल्मोड़ा में एक दिन एक मुसलमान फकीर ने भूख से ग्रस्त स्वामी विवेकानन्द के जीवन की रक्षा उन्हें खीरा खिला कर की थी। इस घटना का उल्लेख कर स्वामीजी ने कहा था : "उस दिन उस व्यक्ति ने सचमुच मेरे प्राणों की रक्षा की थी, क्योंकि मैं और कभी भी भूख से इसना अधिक पीड़ित नहीं हुआ था।"[61] स्वामीजी ने इसी मुसलमान फकीर में देखा था वह प्रेम एवं ममता जहाँ धर्म-मतादि का बन्धन शिथिल पड़ जाता है। क्योंकि भारत वर्ष में हिन्दू मुसलमान तथा अन्य धर्मों का सम्मिलन तो है ही। अतः यही प्रेमदृष्टि भारत वर्ष के स्थायित्व के लिए मन्त्र रूप में स्वामी जी की आँखों में गड़ गयी थी।

यहां पर स्वामी जी को कई अपूर्व दर्शन हुए—स्वर्णोज्ज्वल अक्षरों में मन्त्र दर्शन। एक महत्त्व-पूर्ण दर्शन की बात बताते हुए परवर्ती काल में अपनी शिष्या निवेदिता से स्वामी जी ने इसे कहा था। निवेदिता ने लिखा है : "स्वामीजी बोले, 'संध्या हो रही है; आर्यगण इसी समय सिन्धु नदी के किनारे पदार्पण कर रहे हैं, यहाँ पर उसी युग की संध्या है। देखा, विशाल नदी के तीर पर एक वृद्ध बैठा है। अंधकार की तरंगों पर अंधकार की तरंग आकर ऊनके ऊपर पड़ रही है। वे ऋग्वेद से आवृत्ति कर रहे हैं। इसके बाद मैं सहज अवस्था को प्राप्त कर आवृत्ति करने लगा, बहुत प्राचीन काल में हमलोग जिस सुर का व्यवहार करते थे ठीक उसी सुर में।[62] अल्मोड़ा में स्वामी जी लोग लाला बद्री साह के घर में थे। यहाँ पर आकर स्वामी जी के साथ स्वामी सारदानन्द एवं स्वामी कृपानन्द (बैकुण्ठनाथ सन्याल) मिले। उनलोगों का मन तपस्या के आनन्द से परिपूर्ण था। बदरीनाथ के रास्ते में वे लोग कर्णप्रयाग एवं रूद्रप्रयाग होते हुए श्रीनगर के रास्ते अभिमुख होकर चलने लगे। रास्ते में चट्टी में विश्राम के समय स्वामी जी गुरुभाइयों को उपनिषद् पढ़ाते थे। स्वामी जी को अनुभव हुआ था—नदी के प्रवाह में एक सुर है। एक दिन उन्होंने गुरुभाइयों की दृष्टि आकर्षित कर कहा : "अभी भी मन्दाकिनी केदार-राग में चल रही है।"[63]

कर्ण प्रयाग में अखण्डानन्दजी को ज्वर हुआ था। श्रीनगर के पथ में स्वामी जी का शरीर भी अस्वस्थ हुआ। दुर्बल अवस्था में उनलोगों ने एक धर्मशाला में आश्रय लिया। वहाँ के एक अमीन ने उनलोगों को कविराजी औषध देकर डान्डी द्वारा श्रीनगर पहुँचा देने की व्यवस्था कर दी।

श्रीनगर में एक निर्जन कुटीर में स्वामीजी एवं उनके गुरुभाइयों ने एक माह तक तपस्या की। इसी कुटिया में इसके पहले स्वामी तुरीयानन्द भी रह चुके थे। इसी स्थान पर स्वामी जी ने गुरु-भाइयों के मन में उपनिषद् के उपदेशों को विशेष

भाव से गहराई तक ले जाने का प्रयास किया। दिन पर दिन उसी कुटिर में वे लोग प्राचीन आर्य ऋषिलोगों के द्वारा प्रकाशित गंभीर तत्त्वों की आलोचना करते-करते भाव तन्मय हो जाते थे।"

श्रीनगर से वे लोग टिहरी आये। यहाँ पन्द्रह-बीस दिनों तक वे साधन-भजन में मग्न थे। श्री श्री माँ के निर्देशानुसार अखण्डानन्दजी नित्य माधुकरी (भिक्षाटन) कर स्वामी जी को खिलाते थे। वे ध्यान रखते थे कि उनलोगों के 'मस्तक मणि' स्वामी जी को कोई कष्ट न हो। गणेश प्रयाग में स्वामी जी ने कुछ समय तपस्या करने का संकल्प किया। किन्तु अखण्डानन्दजी को ब्रान्काईटिस् हो जाने से वे देहरादून की तरफ चल पड़े। टिहरी के दीवान रघुनाथ भट्टाचार्य की व्यवस्था से वे लोग मसूरी होते हुए देहरादून पहुँचे। रास्ते में राजपुर में एक निर्जन स्थान पर उनलोगों ने शिव मंदिर में स्वामी तुरीयानन्द को तपस्यारत पाया। अखण्डानन्दजी ने इस समय के स्वामीजी के मनोभाव के बारे में लिखा है : मैंने स्वामीजी को कई बार कहते हुए सुना है कि जब भी वे निर्जन नीरव साधना में डूब जाने की चेष्टा करते उसी समय किसी घटना के दबाव से उन्हें साधना छोड़नी पड़ती।"

देहरादून के सिविल सार्जन मायकलारेन ने अखण्डानन्दजो की परीक्षा कर उन्हें सुझाव दिया कि उन्हें पहाड़ों पर न घूमकर समतल पर जाकर चिकित्सा करानी चाहिए। निर्धन संन्यासियों के लिए समतल पर जाना या चिकित्सा कराना सहज नहीं था। गुरुभाई के लिए स्वामीजी द्वार-द्वार आश्रय एवं सहयोग के लिए प्रार्थना करने लगे। जब किसी ने भी आश्रय नहीं दिया तब एक कश्मीरी पण्डित वकील आनन्द नारायण जी ने उनलोगों को श्रद्धा पूर्वक आश्रय प्रदान किया। उन्होंने परम यत्न से अखण्डानन्द जी के चिकित्सा का दायित्व भी अपने ऊपर ले लिया। वे लोग वहाँ तीन सप्ताह तक थे। कृपानन्दजी को गुरुभाई की सेवा के लिए रख कर स्वामी जी, तुरीयानन्दजी एवं सारदानन्द जी तपोभूमि ऋषिकेश के रास्ते बढ़ने लगे।

ऋषिकेश में चन्द्रेश्वर शिव मन्दिर के पास पर्ण कुटीर में स्वामी जी आदि गंभीर तपस्या में डूब गये। वे लोग वहाँ ब्रह्म-सूत्र की आलोचना करते थे। वहाँ शंकर गिरि नामक एक साधु का संग पाकर स्वामी जी को अत्यधिक आनन्द की प्राप्ति हुई। बाद में स्वामी तुरीयानन्द ने उनलोगों की वहाँ की स्मृति के बारे में कहा : "हमलोग ऋषिकेश में एक ही साथ ठहरे थे। स्वामी जी एक अलग झोपड़ी में रहते थे। सुबह-सुबह हम-लोगों के पास एक साथ चाय पीने आते। यहाँ बैठकर एक पश्चिम देशीय साधु नित्य गीता पाठ करते थे। उनकी शिक्षा कोई विशेष नहीं हुई थी। अतः पाठ में प्रायः भूल होती थी। उन्हें 'गुडाकेशेन' शब्द को 'गुड्डाकेशेन' बारम्बार उच्चारण करते देख कर स्वामी जी ने खूब प्रयत्न कर एवं विशेष भावना से संशोधन कर दिया। हमलोगों से उन्होंने कहा, तुमलोग क्या रोज ही इस भूल को सुनते हो और इसका सुधार नहीं करते ? तुम साधु लोगों में इतनी भी संवेदना नहीं है ? अन्त में स्वामी जी ने उस साधु से कहा, "महाराज ! आप यदि विष्णु सहस्रनाम का पाठ करें तो गीता की अपेक्षा सहज ही शुद्ध रूप से अनायास ही पाठ करने लगेंगे और फिर भगवान् के नाम उच्चारण में भी खूब आनन्द पाएँगे।"

यहाँ पर एक दिन रोग से स्वामी जी के प्राण संकट में पड़ गये। गुरुभाईगण लोग क्रन्दन करते ईश्वर का नाम पुकारने लगे। तुरीयानन्दजी 'संकटास्तोत्र' पाठ करने लगे। हटात् इसी समय न जाने कहाँ से एक साधु आकर उपस्थित हुआ।

उसकी ही दया से स्वामी जी की चेतना लौट आयी। अचेतन अवस्था में स्वामी जी को बोध हुआ, "अभी भी मेरा बहुत-सा कार्य अवशिष्ट है, उन्हें पूरा किए बिना देह त्याग सम्भव नहीं है।" उस समय गुरुभाइयों को यह स्पष्ट प्रतीत हुआ —जैसे कि स्वामी जी के देह-मन का अवलम्बन कर एक विपुल अव्यक्त शक्ति आत्मप्रकाश के लिए व्याकुल है– जैसे कि कोई सीमाओं के बीच और अधिक आवद्ध रह नहीं पा रही हो एवं उपयुक्त परिस्थितियों की प्राप्ति के लिए वह अस्थिर एवं चंचल हो रही हो।"[68]

हिमालय भ्रमण काल में स्वामी जी ने देखी थी साधु समाज की जड़ता! स्वामी अखण्डानन्द ने लिखा है: "स्वामी जी और मैं एक साथ जाते-जाते पहाड़ पर एक स्थान पर देखा, एक साधु ध्यान करने के लिए बैठा है। बैठते ही उसने अपने शरीर को कपड़े से पूरी तरह ढँक लिया। फिर शिघ्र ही जोर-जोर से नाक बजने की आवाज आने लगी। स्वामी जी चिल्ला उठे, "ओ रे! बेटा बैठे-बैठे सो रहा है—अरे उसके कंधों पर हल जोड़ दो तब समय आने पर हो सकता है इसका कुछ हो।" इस घटना को देखकर स्वामी जी ने कहा, सत्त्व के बहाने देश तमःसमुद्र में डूबता जा रहा है। इनलोगों को बचाने के लिए चाहिए आपादमस्तक शिरा-शिरा में विद्युत संचारी रजोगुण।' तभी तो कर्म के ऊपर स्वामी जी ने इतना जोर दिया था।"[69]

ऋषिकेश में स्वामीजी ने अनेक ऐसे महापुरुषों एवं महात्माओं का दर्शन पाया था, जो स्वयं को छुपाकर रखते थे। उनलोगों के बारे में अपना विचार देते हुए स्वामीजी ने कहा: "इनलोगों की तपस्या, तीर्थयात्रा एवं पूजादि का कोई प्रयोजन नहीं हैं, तब भी ये लोग जो तीर्थ-तीर्थ जाकर तपस्यादि कठोर अनुष्ठान करते हैं वे केवल स्वयं के पुण्य बल से लोक-कल्याण करने के लिए पवहारी बाबा की गुहा में जो घोर चोरी करने था, वह बाद में अपनी जीवन-धारा को परिव कर एक अनुभूति सम्पन्न साधु के रूप में रूपान्ति हो गया था। स्वामीजी ने श्रद्धायुक्त उपर्युक्त दर्शन किया। इसी से स्वामीजी ने कहा: "स लोगों में भी साधुत्व का बीज छुपा होता है।"

स्वामी ब्रह्मानन्दजी उस समय कनखल तपस्यारत थे। स्वामीजी आदि एक सुबह उ साथ मिले। बहुत दिनों के बाद गुरुभाई प परस्पर साक्षात पाकर आनन्द से भरपूर हो वे सभी सहारनपुर के वकील श्री वंकुविहा चट्टोपाध्याय के घर गये। वहीं उनलोगों ने कि अखण्डानन्दजी मेरठ में है। सभी ने एक स मेरठ की यात्रा की। परिव्राजक जीवन में स्वा जी की हिमालय परिक्रमा यहीं समाप्त हो गयी

मेरठ में डाक्टर त्रैलोक्यनाथ घोष के घर उ लोगों ने स्वामी अखण्डानन्द जी को देखा डा० घोष ने उनलोगों के प्रति हार्दिक अभ्यर्थ प्रदर्शित की। यहाँ सेठ जी के बगान स्वामीजी कई दिनों तक ठहरे। स्वास्थ्य के कार स्वामीजी पहले डा० घोष के घर ही ठहरे थे। ती के अन्त में गोपालदादा भी वहाँ आकर उनलोग के साथ मिल गये। स्वामीजी, ब्रह्मानन्दजी तुरीयानन्दजी, सारदानन्दजी, अखण्डानन्दजी अद्वैतानन्द जी एवं कृपानन्द जी—पूरे सात गुरुभा गण एक साथ ध्यान-धारणा, जप-तप, साधन भजन में रम गये। सेठ जी का बगान 'दूसरा बरानगर मठ' बन गया। यहाँ स्वामीजी संस्कृत का क्लास लेते थे। इसी तरह संस्कृत का बहुत सा पुस्तक पढ़ा हो गया। स्वामीजी स्वयं भी खूब अध्ययन करते थे। सर जॉन लॉक की ग्रन्थावली उन्होंने यहाँ पढ़कर समाप्त की। यथेष्ट विश्राम के कारण स्वामीजी का शरीर भी पूर्ण रूप से स्वस्थ हो गया।

अपने मेरठ की स्मृति में स्वामी तुरीयानन्दजी ने कहा है : "मेरठ में अवस्थान के समय जो खुशी हुई थी उसका वर्णन सम्भव नहीं है। स्वामीजी ने हमलोगों को जूता सिलाई से लेकर चण्डीपाठ पर्यन्त की शिक्षा उसी समय दी। एक तरफ वेदान्त, उपनिषद्, संस्कृत नाटक आदि का पाठ एवं व्याख्या करते तो दूसरी तरफ रसोई का काम सिखाते। और भी क्या-क्या किया था।...कितना स्नेह, कितना प्यार, कितनी हँसी, कितना भ्रमण सब कुछ मेरे स्मृति पट पर दीप्तमान हो रहा है।"[७३]

मेरठ में गुरुभाइयों में प्रीति सम्बन्ध इतना गहन एवं सजीव हो उठा कि उन्हें विच्छिन्न जीवन-यापन करना अकल्पनीय हो गया। वे सभी स्वामीजी के प्रति निर्भरशील हो गये। किन्तु ठीक समय पर स्वामीजी के मन में एक अन्य चिन्तनस्रोत प्रवाहित होने लगा। उन्होंने आभास किया—प्रत्येक को आत्मनिर्भर होना होगा, कोई किसी के ऊपर निर्भर नहीं करेगा। उन्होंने अन्तर्ध्वनि सुना—'निःसंग जीवन यापन - करने के। तभी एक दिन उन्होंने अखण्डानन्दजी से कहा : "गुरुभाइयों के साथ रहने से तपस्या में विशेष विघ्न होता है। देखो न, तुम्हारी बीमारी के कारण टिहरी में मैं साधन-भजन नहीं कर पाया। गुरु-भाइयों को माया नहीं तोड़ने से कुछ नहीं होगा। जब भी मैं तपस्या करने के लिए मन लगाता था, तभी ठाकुर एक समस्या ला देते थे। मैं इस बार निःसंग निकला। कहाँ ठहरूँगा—किसी को खबर नहीं दूँगा।"[७४] वे अन्य गुरुभाइयों को बुलाकर बोले : "मेरा जीवनव्रत निर्णीत हो गया है। अब मैं अकेला ही रहूँगा; तुमलोग मेरा त्याग करो।"[७५] अखण्डानन्दजी ने खूब आपत्ति की, किन्तु स्वामीजी स्वयं के निर्णय पर अटल रहे। गुरु-भाइयों ने बाध्य होकर स्वामीजी के निर्देश को शिरोधार्य किया। गंभीर भाराक्रान्त हृदय से उनलोगों ने स्वामीजी को विदाई दी।

स्वामीजी के एकाकी भ्रमण का निश्चित रूप से कारण था। उनके मन में उस समय कितनी तरह की अभिज्ञता, कितना दर्शन, हृदय के अन्दर में कितनी अनुभूतियाँ, भावी कार्यों के लिए उनकी कितनी आकुलता, एवं उनके मनोजगत में कितनी चिन्ता भावना विद्यमान थी! विशेष रूप से भविष्य के कर्मपथ के लिए स्वामीजी को तैयार होने की आवश्यकता थी। निःसंग जीवन इसी तैयारी में सहायक सिद्ध होगी। और भविष्य के कार्यों में उनके मन में था विदेशों में वेदान्त का प्रचार। भारत परिक्रमा के समय ही घटनाक्रम में स्वामीजी ने धर्म-सम्मेलन में भाग लेने की आवश्यकता महसूस की थी। किन्तु इस निःसंग जीवन के लिए स्वामीजी ने क्या श्री रामकृष्ण देव का निर्देश नहीं पाया था? (क्रमशः)

संदर्भ

६१. युगनायक विवेकानन्द; प्रथम खण्ड, पृ.-२८४
६२. वाणी व रचना, ९म खण्ड, पृ.-२८७
६३. स्वामी अखण्डानन्द; स्वामी अन्नदानन्द पृ.-६९
६४. स्वामी विवेकानन्द; प्रमथनाथ वसु; प्रथम भाग, पृ.-१६३
६५. युगनायक विवेकानन्द, प्रथम खण्ड पृ.-२८८
६६. स्मृतिर आलोये स्वामीजी, पृ.-७
६७. विवेकानन्द चरित;सत्येन्द्रनाथ मजुमदार, पृ.७७
६८. युगनायक विवेकानन्द, प्रथम खण्ड पृ.-२९२
६९. स्मृतिर आलोये स्वामीजी, पृ.-१७
७०. युगनायक विवेकानन्द; प्रथम खण्ड, पृ.-२९४
७१. वही; पृ.-२९५
७२. स्वामी तुरीयानन्देर पत्र; पृ.-९९७
७३. स्मृति कथा; स्वामी अखण्डानन्द; पृ.-६०
७४. युगनायक विवेकानन्द; प्रथम खंड, पृ.-२९८

देवभोग में स्वामी विवेकानन्द

प्रस्तुति : श्री ब्रजमोहन प्रसाद
क्षेत्रीय शिक्षा उपाधीक्षक, छपरा (

ढाका से स्वामीजी साधु नाग महाशय की जन्मभूमि देवभोग का दर्शन करने गये। नाग महाशय ने १८९९ ई० के दिसम्बर मास में देह त्याग किया था। इससे पूर्व स्वामीजी ने देवभोग में आने का वचन दिया था। इतने दिनों बाद आज उनका वह संकल्प पूर्ण हुआ, परन्तु आज नाग महाशय नहीं हैं। यदि आज वे जीवित होते तो उन्हें कितनी प्रसन्नता होती। देवभोग में उपस्थित होकर स्वामीजी को उस तपस्वी, जनकतुल्य साधु की कितनी ही पवित्र स्मृतियों का स्मरण हुआ। उस पवित्र ऋषि की साधन-कुटी में उपस्थित होकर विवेकानन्द का हृदय श्रद्धा व सम्भ्रम से भर उठा। सती साध्वी नाग महाशय की सह-धर्मिणी के आनन्द की आज सीमा न थी। उनके इष्टदेव की दूसरी मूर्ति के रूप में स्वामीजी उनकी कुटिया में अतिथि हैं। वे समझ न सकीं कि किस प्रकार वह उनकी अभ्यर्थना करें। श्रीरामकृष्णदेव के प्रियतम पार्श्वदों की सेवा के लिए भक्ति व आनन्द में गद्‌गद् होकर वे अनेक प्रकार के व्यंजन तैयार करने लगीं। इस बीच में स्वामीजी अपने साथियों के साथ तालाब में स्नान करने गये। वे बालकों की तरह कूद-कूदकर तैरने लगे। जल छिटक कर खेल करने लगे। इस दृश्य को देख कौन समझेगा कि यही वे कीर्तिमान संन्यासी विवेकानन्द हैं जिन्होंने वेदान्त की सिंह गर्जना से जगत् को कँपा दिया है—यह तो वही श्रीरामकृष्ण के लाड़-प्यार का किशोर चपल बालक है। स्नान के बाद स्वामीजी सो गये। निद्रा—गम्भीर निद्रा। बहुत दिनों के बाद गांव की सुनसान गोद में आकर आज विवेकानन्द को सुषुप्ति प्राप्त हुई। बहुत दिनों से उनकी अच्छी नींद नहीं हुई थीं—क्योंकर होती? दिन के कर्म-कोलाहल के बाद जब वे बिस्तर पर लेटते थे तो कितनी ही चिन्ताएं हृदय में जाग्रत होती थीं। समस्त भारत दीनता, अधःपतन आदि के शोचनीय चित्र बाद एक उनके मानस पट पर उदित होते जिस समय समग्र विश्व विश्राम लेता हुआ और स्तब्ध होता था उस समय उनके चित्त में वेदना का क्या ही आलोड़न होता आँखें बन्द करके विवेकानन्द सोचते थे, "दुःखों को मिटाने के लिए क्या करूँ माँ? हे आत्म विस्मृत भारत-सन्तान! इतना पुकारा भी जो जवाब नहीं मिला माँ। पंजाब, बम्बई, मद्रास जिधर देखता हूँ, उधर ही जरा अवस्था दिखाई देती है। राष्ट्र की इस जड़ को मिटा दूँगा—इस चेष्टा में प्राण दे डालूंगा सभी को उत्तिष्ठत, जाग्रत की वाणी सुनाऊंगा-निराशा के घनान्धकार में भी आशा का आलोक लाने की चेष्टा करूँगा। चेष्टा व्यर्थ हो, शतबार विफल हो—उद्देश्य को न छोड़ूँगा।" जिसके मस्तिष्क में इतनी चिन्ताओं का भार है, भला उनकी नींद कैसे हो सकती है?

दिन के ढाई बजे जगकर विवेकानन्द ने भोजन की इच्छा प्रकट की। सभी कुछ तैयार था। केवल उनके विश्राम में विघ्न न हो इसीलिए सब लोग प्रतीक्षा कर रहे थे! बहुत दिनों के बाद उन्हें निद्रा प्राप्त हुई। अब आनन्दपूर्वक विवेकानन्द भोजन करने बैठे। आनन्द के साथ भोजन कर उन्हें परम तृप्ति हुई। इसके बाद नाग महाशय की सहधर्मिणी द्वारा दिये हुए वस्त्र को बड़े आदर के साथ मस्तक पर लपेटकर सानन्द वे ढाका लौटे। बेलुड़ मठ में लौटकर स्वामीजी अनेक बार संन्यासी व ब्रह्मचारियों को देवभोग की कहानी सुनाकर आनन्द का अनुभव करते थे।

विवेकानन्द चरित, पृ० सं० ५०४-५०६

आत्मज्ञान

डा० रामाशीष प्रसाद

प्रतिबिम्बित करके भी जैसे रंगों से स्फटिक न रँग जाता
प्रारब्ध कर्म करने पर भी ज्ञानी न कभी भी बँध पाता।
शठ के प्रति शठ बन करके भी ज्ञानी शीतल ही रहते हैं;
ज्ञानी न कर्म में बंधते हैं वे निजानन्द में रहते हैं।
अवकाश अवस्थित गगन जनक ज्ञानी विदेह बन कर रहता,
निद्रित समान अभिमान रहित है अहं नहीं ज्ञानी रखता।
है जीवन मुक्त अटल अद्वय संकल्प ओन संशय न कहीं,
समचित्त बना ज्ञानी रहता है कर्मों में आसक्त नहीं।
कीचड़ में जाने पर सुवर्ण होता है कभी अशुद्ध नहीं;
सत्कर्म करे या असत्कर्म क्या जीवन मुक्त अशुद्ध कहीं ?
पत्ता सरिता या मन्दिर में गिरता, तटस्थ रहता तरुवर;
नश्वर ज्ञानी है अविनश्वर जल से ऊपर ज्यों इन्दीवर।
ज्ञानी का घट शरीर नश्वर कंदुक जैसे नट नागर का;
भीतर बाहर है ब्रह्म सलिल ज्ञानी पूरित घट सागर का।
लगता है कोई भिन्न नहीं जग में स्वरूप जब लखते हैं;
मुक्तों को इष्ट अनिष्ट नहीं आनन्द मग्न वे रहते हैं।
आनन्द धर्म में आत्मा का जिसमें बन्धन औ मोक्ष नहीं;
जिसमें मन की परिणति होती है प्रत्यग्ब्रह्म परोक्ष नहीं।
बन कर निमित्त वह पवन आग लहकाता और बुझाता है;
चिन्तन विषयों को लाता है चिन्तन ही ब्रह्म जगाता है।
कारण है चित्त पदार्थों का मन इष्ट अनिष्ट नियामक है;
कामना जहाँ मिट जाती है वह आत्म विचार प्रकाशक है।
कर्तृत्व-भाव मन में रहता तो पाप-पुण्य उसमें जगते;
मन हीन रहा जब ज्ञानी का कर कर्म न कर्त्ता वे बनते।
दर्पण में प्रतिबिम्बित दिनकर दीवार विभासित करता है;
निर्मल मन में बिम्बित आत्मा यह जगत प्रकाशित करता है।
मन का विलयन हो जाने पर है ब्रह्मानन्द प्राप्त होता;
आत्मा पाता है शांत मना साधक को आत्म लाभ होता।
वह आधि व्याधि का कारण है मन-पवन हिलाता वृक्ष-देह;
स्वामी आत्मा को बाहर कर अधिकृत कर लेता अहं गेह।
निश्चल हो जाती चित्त लहर तो ध्यान कमल का खिलता है;
आत्मा है अनुपम कल्प वृक्ष भावानुसार फल मिलता है।

ईशोपनिषद

त्यागपूर्वक संसार का भोग

अवनीन्द्र कुमा

हमारे जीवन का लक्ष्य मात्र खाना-पीना तथा सुखपूर्वक रहना ही नहीं है। हमें अपने कर्म को परमात्मा की ओर प्रवृत्त करना है एवं हमें मोक्ष अथवा कैवल्य प्राप्त करना है।

जीवन के इस आदर्श को बड़े ही व्यावहारिक तथा आधुनिक दृष्टि से ईशोपनिषद् में दर्शाया गया है। उपनिषदों में यह प्रथम तथा सबसे महत्वपूर्ण उपनिषद् है। इस उपनिषद् में मात्र १७ श्लोकों में ही सम्पूर्ण जीवन-आदर्श और खासकर आधुनिकि जीवनादर्श के मूल तत्व आश्चर्यजनक रूप से समाहित हैं। ईशोपनिषद् का सार मुख्यतः प्रथम तीन श्लोकों में ही वर्णित है। आगे के श्लोक इन्हीं प्रतिपादित सिद्धांतों की व्याख्या मात्र करते हैं। ईशोपनिषद् का मुख्य संदेश है—'मानव जीवन का एक मात्र लक्ष्य ईश की प्राप्ति है।'

आधुनिकता के इस युग में मानव को त्याग के आदर्श जीवन का संदेश ईशोपनिषद् के कण-कण में रचा है। ईशोपनिषद् का आरम्भ ही संसार को त्यागपूर्वक भोगने की आज्ञा देता है। ऐसे ही संदेश अन्य श्लोकों में भी हैं। इन श्लोकों को परिमार्जित कर हम इस निहितार्थ के ग्रहण का प्रयास करते हैं।

"ईशावास्यमिद सर्व यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन व्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।१।

अर्थात इस अखिल ब्रह्मांड में जो कुछ भी जड़-चेतन स्वरूप जगत है यह समस्त ईश्वर से व्याप्त है। उस ईश्वर को साथ रखते हुए त्य पूर्वक भोगते रहो। इसमें आसक्त मत हो क्योंकि धन किसका है अर्थात किसी का नहीं

इस प्रथम श्लोक में संसार का सनातन-चिर सत्य प्रतिबिम्बित होता है। वर्तमान आधु युग की भोगवादी, भौतिकवादी दृष्टि को भी श्लोक प्रस्तुत करता है किन्तु परिमार्जित ढंग से

मानव का धन केवल रुपया, पैसा, पुत्रादि नहीं है अपितु, इससे आगे मानवत्व भी कुछ है इन धनों के साथ तथा इनसे बड़ा है। तभी ऋग्वेद में कहा गया है :

"इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि चित्ति
दक्षस्य सुभगत्वमस्ये।
पोषं रचीणामरिष्टि तनूना स्वाद्मानम्
वाचः सुदिनत्वमह्नम।"

अर्थात् हे इन्द्र ! हमें श्रेष्ठ धन दें। हृदय में उत्साह, उत्तम सौभाग्य, धन-धान्य की बहुलता निरोग शरीर, वाणी का माधुर्य और दिनों का सुदिनत्व जैसे श्रेष्ठ धन ही हमें प्रदान करें।

हमारा धर्मतत्व संसार से वैराग्य की आज्ञा नहीं देता। इसका पवित्र तत्व है कि संसार को त्यागपूर्वक भोगो। समस्त जगत को ईश्वर की वस्तु मानो। जगत् शब्द से ही गतिशीलता का आभास होता है। जगत शब्द 'गम' धातु से उत्पन्न है जो चलने के अर्थ में प्रयुक्त होता है। जगत् का पर्यायवाची शब्द संसार के लिए कहा

गया है—'संसरति इति संसारः। अर्थात् जो सदा गतिशील रहता है, वह संसार है। अतः इस गतिशील जगत् के पदार्थों में ममत्व का भाव अज्ञान के अंधकार का मार्ग है। सभी दुःख ममत्व से ही उत्पन्न होते हैं। इस उपदेश से यह परिलक्षित है कि मनुष्य को अपने फल के परिणामस्वरूप प्राप्त वस्तु में ही संतुष्ट होना चाहिए।

"ईशोपनिषद' का दूसरा श्लोक इस प्रकार है:

"कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत शतं समाः।
एवं त्वचि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥२॥

अर्थात् मनुष्य इस संसार में शास्त्रनियत कार्यों को सम्पन्न करता हुआ सौ वर्षों तक जीने की इच्छा करे। इससे भिन्न अन्य मार्ग मनुष्य का नहीं है तथा इस प्रकार (त्याग भाव से) किये गये मानव में कर्म लिप्त नहीं होते।

इस श्लोक में कर्म योग का पाठ पढ़ाया गया है। अर्थात् मानव कर्मरत होकर ही जीवन जीने की इच्छा करे। 'एतरेय ब्राह्मण' में भी कर्म पर जोर देते हुए कहा गया है :—

'कलिः शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः।
उत्तिष्ठस्त्रेता भवति कृतं सम्पद्यते चरन् चरैवति, चरैवति।

अर्थात् मानव का शयन उसका कलियुग है, जम्हाई का युग द्वापर है। जब वह उठ कर खड़ा हो जाता है तो वह त्रेतास्वरूप है तथा चलने का भाव सतयुग है। अतः चलते रहो, चलते रहो। भर्तृहरि भी लिखते हैं :—

"आलस्यं हो मनुष्याणां शरीरस्थो महान्रिपुः।
नास्त्युद्यमसो बन्धुः कृत्वा यं नावसीदति ॥

अर्थात् आलस मनुष्य के शरीर का महान शत्रु है तथा उद्यम के समान मानव का और कोई मित्र नहीं है। परिश्रमी मानव कभी दुःखी नहीं होता।

ईश्वर की प्राप्ति भी उन्हें ही होती है जो अनवरत कर्मरत होते हैं। किन्तु कर्म भी हमें निष्काम कर्म ही करना चाहिए जो हमें बंधनमुक्त करते हैं। इसके विपरीत सकाम कर्म है जो मानव हेतु बंधन का कार्य करते हैं तथा तीसरा शास्त्र-निषिद्ध कर्म है जिनका सर्वथा त्याग करना चाहिए।

साथ ही मानव कर्म में भी लिप्त न हो बल्कि यह निःस्वार्थ भाव से कार्य सम्पादन करे। कर्म-फल को भूलकर कर्त्तव्य के रूप में कार्य परिचालन करे।

'ईशोपनिषद् का तीसरा श्लोक इस प्रकार है :

"असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृता।
तांस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ।३।

अर्थात् आत्मा का हनन करने वाले मानव मृत्यु उपरांत उन लोकों में प्रवेश करते हैं जो असुरों का है तथा 'असुर्य' कहलाता है। यह लोक अत्यधिक अंधकार से आच्छादित है।

यहाँ आत्म-हनन का अर्थ मात्र आत्महत्या नहीं है अपितु आत्म हनन का अर्थ व्यापकतम रूप में इस श्लोक में प्रस्तुत किया गया है।

जो मनुष्य अपने में खोये हैं वे भी अपनी आत्मा का हनन करने वाले हैं। दूसरों को दुःख देने वाले, चोरी, बेईमानी तथा व्यभिचार करने वाले एवं स्वधर्म का आचरण न करने वाले भी इसी कोटि में आते हैं। जो मानव काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह आदि में बंधा तथा आलसी है, वह भी आत्महन्ता है। इस विश्व को झूठा मानने वाला भी आत्म का हनन करता है क्योंकि स्वर्ग, नरक या अन्य लोक कहीं अदृश्य में नहीं प्रत्युत् इसी जगत में, इसी पृथ्वी पर स्थित है। अपनी आत्मा के विरुद्ध चलने वाले तथा आत्मा की आवाज न सुनने वाले भी आत्महंता ही हैं।

मानव मात्र के लिए पवित्र ईशोपनिषद् के इस तीसरे श्लोक का यही संदेश है कि मानव अपनी आत्मा का हनन न करे प्रत्युत् आत्मोद्धार के लिए बल पूर्वक गर्जना कर वही मंत्र दुहराये जो 'ऋग्वेद' की ऋचाओं में वर्णित है :—

"अहमिन्द्रो न पराजिग्य इठनं न मृत्युवेड् वतस्ये कराचन ॥"

अर्थात् मैं इन्द्र हूँ, ऐश्वर्यवान एवं शक्तिवान हूँ, मैं अपनी धन्यता को नहीं हार सकता तथा मृत्यु से भी मैं हार नहीं मान सकता।

वस्तुतः इस तीसरे श्लोक में ही 'ईशोपनि
की समाप्ति हो जाती है। आगे के अन्य
श्लोकों में इन्हीं तीनों श्लोकों की व्याख्या
बारी से की गयी है। ये श्लोक जीवन को प्रक
मान बनाते हैं। इस प्रकार इस महान ग्रन्
सिर्फ प्रथम तीन श्लोक ही जीवन के सारतत्व
प्रकट करते हैं।

गुरु अमरदास की वाणी में सतगुरु की महिमा

प्रो. लालमोहर उपाध्या

भारतीय समाज में गुरु का स्थान बड़ा उच्च, गौरवपूर्ण और समादृत रहता है। सही बात तो यह है कि गुरु ही धर्म और समाज का नियामक रहा है। उपनिषदों में गुरु की महता पूर्ण रूप से प्राप्त होती है। ज्ञान की प्राप्ति गुरु द्वारा ही होती है। मध्य युग के भक्ति साहित्य में गुरु का स्थान बहुत बड़ा है। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में गुरु महिमा मध्य युग के साधकों को अपने पूर्ववर्ती तांत्रिकों और सहज भाव के साधकों से उत्तराधिकार के रूप में मिली थी। श्री गुरु ग्रंथ साहेब में गुरु का सर्वोपरि स्थान है। गुरु ग्रंथ के नाम से ही गुरु की महत्ता सिद्ध होती है। गुरु की आवश्यकता पर आदि गुरु नानक देव जी के पश्चात अन्य गुरुओं द्वारा भी काफी बल दिया गया है।

गुरु अमर दास जी का कथन है कि जीवों और उनके शरीरों आदि की उत्पत्ति गुरु से ही होती है-

"जीउ पिंडु सभु गुर ते उपजै"
गुरमखि कारज सवारे ॥
(गु. ग्र. सा. राग सूही म. ३ पृ. ७५३)

षट् दर्शन, योगी, संन्यासी आदि बिना गुरु भ्रमित ही रहते हैं :—

"खट् दरसन योगी, सनियासी
बिनु गर भरमि भुलाए"

गु ग्र.सा. पृ. ६

बिना गुरु के मोह रूपी अंधकार का प्राव रहता है और बार-बार संसार सागर में डूब पड़ता है :—

"बाझु गुरु है मोह गुबारा।
फिरि फिरि डूबै बारो-बारा"

(गु.ग्र.सा. पृ. १०६

सतगुरु से जो विमुख होते हैं, वे परम अभा होते हैं। वे निरन्तर दुख ही कमाते हैं और मृ सदैव उनकी प्रतीक्षा करती रहती है। वे लो स्वप्न में भी सुख दर्शन नहीं करते और अने चिन्ताओं में जलते रहते हैं :—

"सतगुरु ते जो मुह फेरहि मथे तिन काले।
अनि दिनु दुख कमावदे नित जोहे जम-जाले।
सुपनै सुख, न देखनी बहुचिंता परजाले।"

(गु ग्र सा प ३०)

जो लोग सतिगुरु से मुंह फेरते हैं और उनसे विमुख रहते हैं उनकी अत्यन्त बुरी दशा होती है। वे प्रति दिन बांधे जाते हैं और मारे जाते हैं। उन्हें फिर परमात्मा प्राप्ति की वेला प्राप्त नहीं होती :—

"सतिगुरु ते जो मुंह फेरे ते वेमुखि बुरे दिसनि
अनि दिनु बधे मारी अनि फिरि वेला ना लहनि"
(गु.ग्र.सा. पृ. २३३)

जो व्यक्ति सतिगुरु से मुंह फेरे हुए हैं उन्हें कोई ठौर-ठाव नहीं है :—

"जो सतिगुरु ते मुह फेरे तिना ठाउर न ठाउ।"
(गु.ग्र.सा. पृ. ६४५)

बिना गुरु के लोग घनघोर अंधकार में अज्ञानी और अंधों के समान हैं। उनकी दशा विष्ठा के कीट के समान है। जिस प्रकार विष्ठा का कीट उसी में उत्पन्न होता है, उसी में रहता है और अंत में उसी में मर भी जाता है। उसी भाँति बिना गुरु के लोग विषयों में रहते है और विषयों में ही मर जाते हैं।

"बाझु गुरु है अंध गुबारा।
अगिआनी अंधा अंधु अंधारा।
विष्ठा के कीड़े विष्ठा कमावहि फिरि
विसटा माहि पचावाणिआ।"
(गु.ग्र.सा. पृ. ११६)

बिना गुरु के परमात्मा के महल और उसके नाम की प्राप्ति नहीं होती :—

"बिन गुरु महल न पाईऐ नाम,
न परापति होई" (गु.ग्र.सा. पृ. ३०)

गुरु की इतनी महत्ता देख कर अनेक विषयी भोगी सांसारिक मनुष्य भी सतिगुरु बनने का ढोंग करने लगे। ऐसे गुरुओं को असति गुरु अथवा अंधा गुरु कहा गया हैं। इस तरह गुरुओं के बारे में श्री गुरु अमरदास का फरमान इस प्रकार है :—

"अंधे गुरु से भ्रम निवारण नहीं हो सकता क्योंकि वह मूल परमात्मा को त्याग कर द्वेष भाव में ही लिप्त रहता है। वह विषय रूपी विष में मतवाला है और अंत में विष में ही समा जाता है :—

"अंधे गुरु ते भरमु न जाई।
मूल, छोड़ि लागे दूजै भाई।"
विखु का माता विखु माहि समाई॥
(गु ग्र.सा. पृ. २३२)

अंधे गुरु का वर्णन श्री गुरु अमरदास जी ने पूर्ण रूप से किया है।

जो गुरु अंधे हैं उनके शिष्य भी अंधे ही कर्मों में प्रवृत्त होते हैं। वे अपनी मर्जी के अनुसार कार्य करते हैं और नित्य ही झूठ बोलते हैं। वे नित्य प्रति झूठ और असत्य कमाते हैं और दूसरों की निन्दा में रत रहते हैं। ऐसे निन्दक स्वयं तो डूबते हैं अपने कुटुम्ब वालों को भी डुबो देते हैं। परन्तु उन बेचारे शिष्यों का क्या अपराध है? वे बेचारे तो जिस प्रकार के कार्य में प्रेरित करके लगाये जाते हैं उसी प्रकार लगते हैं :—

"गुरु जिना का अंधुला
सिख भी अंधे करम करेनि।
नानक जितु ओई लाए
तितु लगे ओई वपुड़े किया करेनि।"
(गु.ग्र.स. पृ. ९५१)

सही बात तो यह है कि सिख गुरुओं ने स्थान-स्थान पर इस बात का संकेत किया है कि परमात्म की अलौकिक कृपा से ही सतिगुरु की प्राप्ति होती है। श्री अमरदास जी ने इस प्रकार वर्णन किया है :—

"पूरे भागि सतगुरु पाईये
जे हरि प्रभु वखस करेई"
(गु.ग्र.सा. पृ. ८५१)

परमात्मा की कृपा के साथ-ही-साथ गुरु प्राप्ति के लिए अपने अहं भाव को नष्ट कर देना परम आवश्यक है। जो अपने आपेपन को गवां देता है, उसी को सतिगुरु की प्राप्ति होती है।

चरैवेति

स्वामी ब्रह्मेशानन्द
रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी

एक लकड़हारा था। मेहनती, ईमानदार पर गरीब। मेहनत करने पर भी, ईमानदार होते हुए भी सभी लोगों के नसीब में धन नहीं होता। भाग्य या दैवयोग कुछ भी कहें अनुकूल नहीं होता, और फिर काल, समय भी एक महत्त्वपूर्ण घटक है, सफलता के लिए। सम्भवतः उस बेचारे गरीब लकड़हारे का समय ठीक नहीं था। दिन भर कड़ी मेहनत करता, लकड़ी काटता, और शहर में जाकर बेचकर किसी तरह अपना और अपने परिवार का भरण-पोषण करता।

एक दिन उसकी झोपड़ी के सामने से एक साधु बाबा गुजरे। युवक, तेजस्वी, ब्रह्मचारी। लकड़हारे ने आगे बढ़कर चरणों में दण्डवत् प्रणाम किया। श्रद्धालु तो वह था ही। गरीब लोग अधिकांशतः धार्मिक होते हैं। बड़ी विनम्रता से स्वामीजी को निवेदन किया कि उसके घर से भिक्षा ग्रहण करें। बाबाजी लकड़हारे की भक्ति देखकर संतुष्ट हुए और उसकी भिक्षा स्वीकार की। धनी लोगों की घी चुपड़ी रोटी और मिष्ठानों की तुलना में गरीब की सूखी मोटी रोटी उन्हें अधिक प्रिय थी।

संतुष्ट एवं तृप्त होकर जब स्वामीजी रवाना होने लगे, तो लकड़हारे ने पुनः प्रणाम किया और श्रद्धानवत् दृष्टि से आशीर्वाद की याचना की। स्वामीजी से उसकी गरीबी छिपी नहीं थी। पर उसे वे धन कहां से देते! वे स्वयं भी तो कपर्दक शून्य भिखारी थे। लेकिन उनके पास जो था, उसे तो वे दे ही सकते थे—सुखी जीवन के कुछ मूल मंत्र, सफलता के कुछ रहस्य। लकड़हारे के सिर पर स्नेह और आशीर्वाद के हाथ रखकर उन्होंने कहा, बेटा आगे बढ़ो, आगे बढ़ो। एक स्थान पर खड़े न रहो।—और वे अपनी राह पर चल दिये।

लकड़हारा स्वामीजी को भोजन कराने में ही संतुष्ट था। उन्होंने उसके सिर पर हाथ रख दिया है, इससे ही वह अपने को कृत-कृत्य अनुभव कर रहा था। वह पुनः अपनी दैनिक चर्या में लग गया। जीवन प्रवाह पुनः बहने लगा। कुछ दिन इसी तरह बीत गये। एक दिन रात्रि में अपने बिस्तर पर लेटा वह सुस्ता रहा था। बीते दिनों की स्मृतियाँ उसके तनाव रहित मन पर अपने आप उठ रही थीं। स्वामीजी से हुई भेंट की सुखद शान्तिप्रद स्मृति भी मन में यों ही उभर आयी। अचानक उसे याद हो आया बाबाजी का कथन "बेटा आगे बढ़ो।" अरे, इस बात को तो वह भूल ही गया था। वह सोचने लगा। बाबाजी ने वो बात क्यों कही थी। बिना उद्देश्य के निरर्थक चर्चा तो साधु सन्त नहीं करते। उनकी प्रत्येक बात के पीछे कुछ-न-कुछ अर्थ छिपा रहता है। आखिर उन्होंने यह बात क्यों कहीं। 'अच्छा,' लकड़हारे ने सोचा, "मैं कल इस वन में जहाँ से मैं लकड़ी काट कर लाता हूँ, आगे बढ़ूंगा। अगर

कुछ अर्थ न भी हो, तो भी, स्वामीजी के आदेश का पालन हो ही जायेगा।"

प्रातःकाल लकड़हारा अपनी कुल्हाड़ी लेकर वन में प्रविष्ट हुआ। लेकिन प्रतिदिन की तरह लकड़ी काटने के लिए बीच में कहीं रुका नहीं। वन के उस छोर तक पहुँच गया जहाँ तक वह अब तक जा चुका था तथा जिस सीमा तक वह वन को पहचानता था। वह और आगे बढ़ गया—अनजान भयावह वन में—लेकिन स्वामीजी के आदेश से साहस पाकर, निडर होकर। लगभग एक घण्टे तक चलने के बाद उसने वन के वृक्षों में परिवर्तन देखा—एक दो पेड़ अन्य पेड़ों से भिन्न दिखे। ध्यान से देखने तथा तनों को खरोचने पर उसे यह जानकर आश्चर्य हो गया कि वे पेड़ चंदन के हैं···तब तो चन्दन के और पेड़ होंगे—यह सोचकर वह और आगे बढ़ गया। आगे जाने पर वह देखता क्या है, कि वहाँ चन्दन के एक दो पेड़ ही नहीं हैं—सारा जंगल ही चन्दन के वृक्षों का है। वह खुशी से उछल पड़ा। वहीं उसने बाबाजी के उद्देश्य से भूमि पर पतित हो साष्टांग प्रणाम किया और चन्दन की लकड़ी काटने में लग गया।

एक वर्ष बीत गया। अब जंगल के किनारे से से नगर की ओर जाने वाली सड़क पर वह एक पक्के मकान में रहता है। लकड़ी ढोने के लिए उसने एक सायकिल युक्त ठेला खरीद लिया है। मकान से लगा एक पक्का गोदाम भी है जहाँ वह लकड़ियाँ जमा कर सकता है। उसकी दुकान पर "चन्दन का व्यापारी" का बोर्ड भी लग गया है। लक्ष्मी देवी की उस पर कृपा हुई है। मेहनत तो अब भी करता है लेकिन अब वह गरीब नहीं है। दूर-दूर से चन्दन की लकड़ी के लिए उसके पास आर्डर आते हैं। ईमानदारी अभी भी उसका आभूषण है।

एक दिन यों ही अपने पलंग पर लेटा वह बीते दिनों की सुखद याद में डूबा था। आखिर अधिकांश लोग भविष्य की चिन्ता और भूत का स्मरण ही तो सदा किया करते हैं—कि अचानक उसे स्वामीजी की याद हो आयी। उनके दर्शन पुनः तो हुए नहीं, पर उनकी वाणी उसके कानों में फिर एक बार गूंज उठी "बेटा आगे बढ़ो।" वह अचानक अपने बिस्तर पर उठ बैठा। कोई बात उसके मन में बिजली की तरह कौंध गई थी जिसने उसे मानो अपने बिस्तर से उछाल दिया था। क्या बात थी वह? स्वामीजी ने यह तो नहीं कहा था कि चन्दन के वन में जाकर रुक जाना। उन्होंने तो बस आगे बढ़ने को कहा था, रुकने को नहीं। उन्होंने मार्ग दिखाया था लक्ष्य नहीं। चलना सिखाया था ठहरना नहीं, गन्तव्य का संकेत नहीं दिया था, केवल बढ़ने का उपदेश दिया था। और मैं मैं तो चन्दन के जंगल में रुक गया। नहीं, कल और आगे बढ़ूँगा।

पर आज रात को उत्सुकता के कारण लकड़हारे को नींद ही नहीं आयी। भोर होने से पहले ही वह कुल्हाड़ी कन्धे पर रखकर कलेवा पोटली में बाँधकर द्रुत पदों से जंगल में घुस गया। आज उसकी गति अत्यन्त तीव्र थी। सारा वन उसका जाना पहचाना था। चन्दन के वन के अन्तिम छोर तक उसे रोकने वाली, उसके मन को अपनी ओर खींचने वाली कोई चीज नहीं थी। बढ़ते-बढ़ते दोपहर तक वह बहुत दूर निकल गया। चन्दन का वन पीछे छूट गया। पहाड़ों की तलहटी में वह पहुँचा। छोटी-छोटी पहाड़ियाँ, ऊबड़-खाबड़, जमीन। पर यह क्या? यहाँ की मिट्टी तो कुछ भिन्न प्रतीत होती है। रंग कुछ भूरा-सा है—जंगल की मिट्टी से भिन्न। आगे चलने पर तो उसी तरह की चट्टानें दिखाई देने लगी। जाने अनजाने वह तांबे की खान में घुस गया था, जहाँ तक आज तक

कोई नहीं पहुँचा था और न जिसके बारे में कोई जानता था।

शहर जाने वाली सड़क के किनारे एक हवेली खड़ी हो गयी। लकड़हारा अब चन्दन का व्यापारी ही नहीं, तांबे की खादान का मालिक हो गया था। सेवक सेविकाएँ, आगन्तुकों की आवाज से उसकी हवेली सदा मुखरित रहती है।

उसका एक पुत्र चन्दन का कारोबार देखता है, दूसरे को वह तांबे की खान सौंपने को व्यग्र है, क्योंकि उसे आगे बढ़ना है। इस बार वह तांबे की खान पर रुकने की गलती नहीं करेगा। हवेली में घुसते ही प्रमुख दरवाजे के ऊपर, बैठकखाने में, शयन घर में सर्वत्र बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा हुआ है, "आगे बढ़ो।" यह उसके जीवन का मूल मंत्र हो गया है, और वह चाहता है कि उसके पुत्र पौत्र तथा सगे सम्बन्धी सभी उसे अपना कर समृद्धि सीढ़ी पर आरोहण करें।

कहानी को यहीं समाप्त करें। क्योंकि बढ़ने का अन्त नहीं है। तांबे की खान से बढ़ने पर लकड़हारे को चाँदी की उसके बाद की और अन्त में हीरे की खानें मिलीं।

श्रीरामकृष्ण यह कथा आध्यात्मिक मुमुक्षु को सुनाकर आध्यात्मिक पथ पर प्रोत्साहित करते थे। आध्यात्मिक अनुभूतियों का कहीं नहीं है। अतः यह कभी न सोचें कि हम गन्तव्य तक पहुँच गये हैं। आगे बढ़ने का, चलते रहने का, गतिशील बने रहने का यह मंत्र लौकिक व आध्यात्मिक, सभी कार्यों के उपयोगी हैं। विद्यार्थियों, नवयुवकों एवं युवतियों के लिए तो यह विशेष रूप से लाभकर

धर्म-प्रचार की पात्रता

महात्मा बुद्ध ने अपने शिष्यों से कहा—'मैं तुम्हें एक प्रदेश में किसी निशेष कठिन काम के लिए भेजना चाहता हूँ। अगर उस प्रदेश के लोग तुम्हारी बात न सुनें, तो तुम क्या करोगे ?

'भगवान् ! हम समझेंगे कि वे लोग बड़े अच्छे हैं। उन्होंने हमारी बात नहीं सुनी, लेकिन हमें गाली तो नहीं दी।' एक शिष्य तत्परता से बोला। 'और अगर उन्होंने तुम्हें गाली दी तो ?' 'तो हम समझेंगे कि वे लोग बड़े अच्छे ही हैं। उन्होंने हमें न मारा, न पीटा।' दूसरे शिष्य ने जवाब दिया।

'और अगर मारा-पीटा तो ?' 'जान से तो नहीं मार डाला। बडे भले लोग हैं वे।' 'और अगर जान से मार डाला तो ?' चौथे शिष्य ने फुर्ती से कहा—'तब भी हम समझेंगे कि उस प्रदेश के लोग बहुत ही अच्छे हैं, जिन्होंने हमें भगवान् का काम करते हुए भगवान् के पास पहुँचाया।' मुस्कुराते हुए महात्मा बुद्ध बोले 'जाओ, शिष्यो ! तुम परीक्षा में उत्तीर्ण हो गये। अब तुम धर्म-प्रचार कर सेकते हो।'

—पुष्पेश कुमार 'पुष्प'

धार्मिक-दोहन

ए. के विश्वास
आई. ए. एस.
आयुक्त, तिरहुत एवं छपरा प्रमंडल
(बिहार)

मुगल बादशाह औरंगजेब को हिन्दुओं पर लगाये गये "जजिया कर" के लिए इतिहास ने कभी माफ नहीं किया। उसे कट्टर मुसलमान, हिन्दुओं का दुश्मन कहा और यहां तक कि उसकी धार्मिक कट्टरता को मुगल वंश के पतन का मूल कारण बताया। परन्तु क्या आप जानते हैं कि धर्म के नाम पर सदियों से निरीह एव धर्मभीरु लोगों का किस प्रकार शोषण होता आया है ! धर्म का उपयोग अफीम की तरह हुआ। पिलानेवाले ने छककर पिलाया, जिसने पिया लूटा गया।

सी० जे० स्टीभेन्सन मूर, जो वर्ष १८९२ से ९९ तक मुजफ्फरपुर जिले में चल रहे सर्वेक्षण कार्य के प्रधान थे, लिखते हैं कि इस जिले के कुछ हिन्दू जमींदार के मुस्लिम रियाया को नमाज अदा करने के लिए कर की अदायगी करनी पड़ती थी। इस कर का नाम "नमाज बहरी" था। मूर कहते हैं कि यह सौभाग्य की बात है कि इस अपमानजनक कर का जाल बहुत सीमित क्षेत्र में व्याप्त था। स्पष्ट कारणों से श्री मूर ने इन गाँवों एवं मालिकों का अपने प्रतिवेदन में उल्लेख नहीं किया है।

जैसे जमींदारों के अत्याचार के हजार ढंग थे धर्म के नाम पर प्रजा को लूटने के उनके हथकंडे भी निराले थे।

अपने पत्रांक ३८२ दिनांक ३० अगस्त १८७१ में बालासोर जिला (उड़ीसा) के तत्कालीन जिलाधिकारी श्री जॉन वोम्स ने आयुक्त, उड़ीसा को लिखा :—

यहाँ के जमींदार धर्म के नाम पर प्रजा पर दोहरी मार देते हैं। पहली मार "वारुणि स्नान" के नाम पर दी जाती है। जब जमींदार पर्वो के अवसर पर "जाजीपुर" में स्नान करने जाते हैं, रेयतों से कर उगाही जाती है। जब जमींदार भगवान जगन्नाथ के दर्शनों के लिए पुरी जाते हैं तो "पुरुषोत्तम खर्चा" के नाम से रैयतों से धन वसूला जाता है। और जब जमींदार पुरी से तीर्थाटन कर लौटते हैं तो रैयतों को धन चुका कर उनसे "हाथ भर महाप्रसाद" प्राप्त करना होता है। जो भी रैयत इस महाप्रसाद को नहीं लेने का दुस्साहस करता है, जमींदार उसे क्रूरतम दण्ड देता है।

ब्राह्मण धर्म के पुरोहितवाद का शिकंजा पूरी अशिक्षित एवं असहाय हिन्दू प्रजा के शोषण का मूल कारण था। पुरोहितवाद का धर्म की आड़ में अपना वर्चस्व कायम था। जमींदार इनकी छाया में मनमाने शोषण एवं उत्पीड़न के लिए स्वच्छन्द थे।

सर विलियम हन्टर लिखते हैं कि भागलपुर जिले में ब्राह्मणों के लाभ के लिए जमींदार द्वारा रैयतों से "चन्दा ब्राह्मण" नाम से कर की वसूली की जाती थी। सर विलियम हन्टर के ही शब्दों में

"ब्राह्मणों को दान देने हेतु रैयतों से धन निचोड़ा जाता था। शाहाबाद जिले में ब्राह्मणों को देने हेतु रैयतों से कर लिया जाता था जिसे "चन्दा" कहा जाता था। गया जिले में किसानों को प्रत्येक फसल का कुछ भाग पहले ब्राह्मणों के लिए निकाल देना देना पड़ता था जिसे "विष्णु पारित" या "अंगों" कहा जाता था। जमींदार इन करों को दिलाने में काफी सख्त एवं तत्पर रहते थे।"

सर हन्टर आगे लिखते हैं कि बोधगया के महंथ ने धर्म के नाम पर वसूली का अपना जाल अलग से फैला रखा था। वे डेढ़ प्रतिशत कर की वसूली अलग से करते थे जिसे "दीवानी" कहा जाता था। मुंगेर जिले में धर्म के नाम पर रैयतों से "मगरदावा" वसूला जाता था। जमींदार का दान मूल रूप से ब्राह्मणों को ही प्राप्त होता था।

बम्बई विश्वविद्यालय के तत्कालीन उप कुलपति तथा रायल एशियाटिक सोसाइटी की बम्बई शाखा के अध्यक्ष जॉन विल्सन के शब्दों में "गरीब ब्राह्मण बड़े भूपतियों से दान पाते थे। इस दान में उन्हें जमीन मिलती थी। इस प्रकार "ब्रह्मोत्तर" एवं "देवोत्तर" जमीन की किस्मों का उद्भव हुआ। पश्चिम बंगाल के वर्द्धमान जिले में मूर्ति पूजा तथा मन्दिरों के लिए इतनी जमीन प्राप्त थी कि उनका वार्षिक लगान १५ से २० लाख रुपयों के बीच होता था। नदिया जिले में राजाओं की ओर से देवताओं एवं ब्राह्मणों के नाम पर १८ लाख बीघे जमीन दान में दी गयी थी जो लगभग ६ लाख एकड़ के समतुल्य होता है। इन बातों से स्पष्ट होगा कि कैथोलिक क्रिश्चियन देश के धर्मगुरुओं की तुलना में हिन्दुस्तान के ब्राह्मण राष्ट्रीय धन का गुरुतर भाग हड़प कर जाते हैं।"

१८७२-७३ ई० के अपने प्रशासकीय प्रतिवेदन में बंगाल सरकार ने उल्लेख किया है कि २४ परगना जिले में रैयतों से धर्म के नाम पर निम्नां-
कित करों की वसूली अवैध ढंग से की जाती है:-

(१) जन्मयात्रा एवं रास खर्च :—यह कर विभिन्न धार्मिक उत्सवों के अवसर पर लगाया जाता था।

(२) वास्तुपूजा खर्च :—यह कर पूस माह के अंतिम दिन वास्तु पुरुष (गृह देवता) की पूजा के लिए लगाया जाता था।

(२) "श्यामा घी" एवं "श्यामा चावल" :— मानभूम जिले के गजेटियर में श्री एच. कूपलैंड, आई. सी. एस. लिखते हैं कि दुर्गापूजा के अवसर पर श्यामा घी एवं श्यामा चावल की वसूली जमींदार द्वारा रैयतों से की जाती थी। रैयत को श्यामा घी के रूप में बकरी का मूल्य तथा घी देना पड़ता था तथा श्यामा चावल के रूप में घी का मूल्य एवं चावल लगता था। कूपलैंड कहते हैं कि जमींदार की ओर से यदा कदा रैयतों से पुआल की भी मांग होती थी जिसे उन्हें देना ही पड़ता था।

(४) पूजा-पार्वनी:—बोगरा (अब बंगलादेश में) के जिलाधिकारी लिखते हैं कि दुर्गापूजा के अवसर पर जमींदार द्वारा रैगतों से कर वसूली की जाती थी जिसे "पूजा-पार्वनी" कहा जाता था।

(५) भिक्षा :—पावना (अब बंगलादेश) जिले में जब कभी जमींदार के यहाँ श्राद्ध या शादी हो अथवा पूजा का बड़ा आयोजन हो तो रैयतों से "भिक्षा" ली जाती थी। रैयतों से पूजा के नाम पर बेदर्दी से इस कर की वसूली की जाती थी। यही कारण था कि सन् १८७३ में पावना जिले में हीं सर्वप्रथम किसानों का विद्रोह हुआ।

(६) सर हन्टर कहते हैं कि ढाका में रैयतों को "ईद" एवं ऐसे अन्य पर्वों के अवसर पर

मुसलमान जमींदार के दरवार में भारी भेंट चढ़ानी पड़ती थी।

(७) नोआखाली जिले में दुर्गापूजा, जगधात्री-पूजा तथा श्यामापूजा के अवसर पर रैयतों को भारी कर चुकाना पड़ता था।

(८) "ठाकुर सेवा" :—रंगपुर जिले में विभिन्न उत्सवों के अवसर पर व्यय वहन हेतु "ठाकुर सेवा" नाम से रैयतों से कर वसूला जाता था। ढोल-यात्रा के गायकों को देने हेतु भी गरीब रैयत को ही कर का बोझ ढोना पड़ता था।

(९) "राज-सितुरी" :—श्री एस. सी. वेली, आई. सी. एस लिखते हैं कि मिदनापुर जिले में ठाकुर (भगवान की मूर्ति) के लिवास के लिए रैयतों से "राज-सितुरी" कर की वसूली की जाती थी। मन्दिर, धर्मशाला तथा पहाड़ियों पर अतिथिशाला निर्माण के लिए रैयतों से कर लिया जाता। जमींदारों की धर्मान्धता की वेदी पर निःसहाय रैयतों की बलि दी जाती थी। बंगाल के जमींदारों की शान थी कलकत्ता के आसपास आलीशान मकान, शानदार बाग, बेगमों का बड़ा हरम तथा तवायफों एवं नचनियों का काफ़िला।

(१०) काली कुली एवं बहरी-ए-कुली :—चटगांव के जमींदारों के द्वारा कालीपूजा तथा होली के नाम पर रैयतों से "काली-कुली" कर लिया जाता था। भागलपुर में इस कर का नाम बहरी-ए-कुली था।

(११) राम-दानी :—शाहावाद जिले में रैयतों से धार्मिक कृत्यों के लिए "राम-दानी" नाम से कर लिया जाता था।

(१२) दर्शनी :—हजारीबाग जिले में दुर्गापूजा के अवसर पर रैयतों को जमींदार का दर्शन कर चुकाकर करना पड़ता था।

(१३) करांची :—इसी जिले में दशहरा पर्व में बलि देने हेतु भैंसा का आधा मूल्य राज्य के रैयतों को चुकाना पड़ता था। हरिहर, दिवाली, कान्ह अष्टमी, चैतनवमी, होली, जितिया आदि पर्व के समय रैयतों को घी, दूध, दही तथा रुपया देना पड़ता था।

(१४) कारा-बकरी :—लोहरदग्गा जिले में धार्मिक करारोपण कुछ सहज था। महाराजा को दशहरा के अवसर पर प्रत्येक गाँव से कम-से-कम दो कारा तथा छः बकरा का मूल्य चुकाना पड़ता था।

(१५) झिक्का एवं मंगल बकरा :—"कारा-बकरा" कर के अतिरिक्त लोहरदग्गा में रैयतों से दशहरा के अवसर पर झिक्का एवं मंगल बकरा की वसूली की जाती थी।

(१६) निशिष्ट बकरा :—दशहरा के ही अवसर पर "कारा बकरा कर" झिक्का एवं मंगल बकरा" के अतिरिक्त निशिष्ट बकरा लिया जाता था जिसका सवा पाँच आना मूल्य जमींदार द्वारा रैयत को दिया जाता था।

१९वीं शताब्दी के इतिहासकार जॉन क्लर्क हर्शमैन लिखते हैं कि मुगल बादशाह अकबर ने इस प्रकार के सारे नाजायज करों की वसूली पर पाबंदी लगा दी थी।

कलकत्ता उच्च न्यायालय ने चुल्टन महतो बनाम तिलकधारी सिंह के मामले में ९ जनवरी १८८५ को एक ऐतिहासिक फैसला दिया तथा इस प्रकार के सारे करों को अवैध घोषित कर दिया। सर रिचार्ड गर्थ, मुख्य न्यायाधीश की अध्यक्षता में यह फैसला हुआ जस्टिस मित्तर, जस्टिस प्रिंसेप, जस्टिस टारहाम जस्टिस पीगाट के पूर्णपीठ द्वारा यह फैसला घोषित किया गया।

गया जिले से मामला कलकत्ता उच्च न्यायालय में गया था।

इस तरह की धर्म के नाम पर शोषण की घृणित परंपरा को देखते हुए केवल मुसलमान साम्राज्यवादियों के विरुद्ध धर्म के नाम पर नाजायज कर लेने का आरोप लगाना सर्वथा असंगत ही प्रतीत होता है।

नदिया के महाराजा के धार्मिक जुनून की बड़ी चर्चा थी। उन्हें शिक्षा एवं संस्कृति का भी रक्षक कहा जाता था। विलियम वार्ड उनके धार्मिक उन्माद का किस्सा निम्न प्रकार उद्धृत करते हैं:—"महाराजा नदिया दुर्गापूजा पूरी शान-शौकत से मनाते थे। १३ दिनों तक बकरों की बलि का नृशंस खेल खेला जाता था। पहला दिन एक बकरे की बलि से प्रारम्भ होता। पुनः प्रत्येक दिन पिछले दिन की अपेक्षा बकरों की संख्या दूनी कर दी जाती। इस प्रकार अंतिम दिन बलि की संख्या ३३,१६८ हो गयी। पूरी पूजा में कुल ६५,५३५ जानवरों की बलि दी गयी। राजा ने जानवरों के मृत शरीर को नावों में लादकर बगल के ब्राह्मणों के गाँवों में भेज दिया। ब्राह्मण जिसे खा नहीं सके उन्हें फेंक दिया गया।"

जानवरों की नृशंस हत्या तथा धर्म के नाम पर इस प्रकार के बर्बर व्यवहार का उदाहरण विरला ही होगा। जाहिर है कि ये जानवर महाराजा के नहीं थे वरन् लोहरदग्गा की तरह इन्हें गरीब एवं निरीह प्रजा से बलात् छीन लिया गया था।

१९०१ की जनगणना के अनुसार बिहार, उड़ीसा एवं बंगाल में २,६९,००० जमींदार थे। उनमें ब्राह्मणों की संख्या-८८,०००, कायस्थ-७३,०००, भूमिहार-३६,०००, राजपूत-२५,०००, कैवर्त ११,०००, अहीर, गोला, वैद्य, कारण, कुर्मी, महाशूद्र, राजवंशी, शाह एवं तेली की संख्या-४,००० प्रत्येक थी। मुसलमान जमींदारों की संख्या-५८,००० थी।

बलि की नृशंस प्रथा का यहीं अंत नहीं था। जे० लॉग जो दीनबन्धु मित्रा के बंगला नाटक "नील दर्पण" का अंग्रेजी अनुवाद कर ब्रिटिश सरकार के कोप भाजन बने थे लिखते हैं कि १८३२ ई० में कालीघाट के एक ब्राह्मण ने बाल कटाने के उद्देश्य से एक मुसलमान नाई को बुलाया। बाल काटने से पूर्व काली को बलि देने हेतु नाई से एक बकरे को पकड़ने के लिए कहा। फिर बकरा के बदले नाई की ही बलि दे दी। बाद में उस ब्राह्मण को मौत की सजा दी गयी।

इतिहासकारों ने औरंगजेब की क्रूरता, धार्मिक असहिष्णुता का व्योरा प्रस्तुत किया है। परन्तु यह आश्चर्यजनक है कि उन्होंने जमींदारों के जालिम व्यवहार, पुरोहितों के धर्म के नाम पर भारी जुल्म की इन वारदातों की ओर से आँखें क्यों फेर ली? स्पष्ट कारण तो यही लगता है कि अधिकांश बुद्धिजीवी हिन्दू थे तथा उनमें ब्राह्मणवाद का विरोध करने का साहस नहीं था।

बुद्धिजीवियों एवं सुधारकों के नि:स्वार्थ प्रयास से विश्व भर में मानवतावाद एवं समानता का बिगुल बजा तथा अन्ध-विश्वास, असमानता एवं क्रूर प्रथाओं का अन्त हुआ। देखें, हमारी बारी कब आती है।

शंकर चरित

—इन्द्रदयाल भट्टाचार्य
अनुवादक—स्वामी विदेहात्मानन्द
रामकृष्ण मिशन, रायपुर (म०प्र०)

अद्वैत सत्य

सेतुबन्ध रामेश्वर के निकट मध्यार्जुन नामक स्थान में एक प्रसिद्ध शिव मन्दिर था। शंकर ने शिष्यों के साथ वहाँ जाकर मन्दिर के प्रांगण में अपना आसन लगाया और वेदान्त के सार रूप में अद्वैत मत की व्याख्या करने लगे। उस अंचल के पण्डित, ज्ञानी, अशिक्षित सभी उनका उपदेश सुनने आये। उनके पाण्डित्य, वाग्मिता तथा अपूर्व मुखश्री को देखकर सभी श्रद्धान्वित, आनन्दित तथा मोहित हुए।

बाल्यकाल से ही मनुष्य जिस प्रकार के चिन्तन का अभ्यास करता है, बड़े हो जाने पर उसमें परिवर्तन लाना बड़ा कष्टकर हो जाता है और अधिकांश लोग इसमें सफल नहीं होते। विशेषकर साधारण आदमी को तो अपने आपको सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड व्यापी चैतन्य सत्ता सोचने में बड़ा भय लगता है, उसे यह नितान्त असम्भव-सा प्रतीत होता है और वह सोचता है कि इतने सुखद इस क्षुद्र 'मैं' को छोड़ देने से तो सब चला जाएगा। यदि सब कुछ ब्रह्म ही है, तब तो रूप-रस-गन्ध-स्पर्श-शब्द इन सबका लोप हो जाएगा और उसके बाद मैं क्या लेकर रहूँगा—यही सोचकर मनुष्य चतुर्दिक् अन्धकार देखने लगता है।

शंकर ने युक्ति तथा शास्त्र का समर्थन दिखा कर सबकी बुद्धि को अद्वैत की ओर मोड़ दिया। तथापि अनेकों के मन में सन्देह दोलायमान होता रहा। परन्तु बोलना तो दूर, इन ज्वलन्त अनल के समान तेजस्वी युवा संन्यासी के समक्ष जोर से श्वास छोड़ने तक में भय लगता था। आखिरकार एक वृद्ध ब्राह्मण साहसपूर्वक उठ खड़े हुए और कहने लगे, "हे महात्मन्, हम आपकी असाधारण विद्या-बुद्धि तथा वाग्मिता पर मुग्ध हो गये हैं। परन्तु विद्या-बुद्धि एवं वाग्मिता के द्वारा धर्म का निर्णय नहीं होता। जिसमें बुद्धि अधिक है, वह सभी विषयों पर अपने मत के अनुरूप युक्तियाँ दे सकता है; यहाँ तक कि साधारण लोगों के समक्ष युक्ति के बल से सत्य को मिथ्या और मिथ्या को सत्य प्रमाणित कर देने की क्षमता भी किसी-किसी में दीख पड़ती है। यदि आपसे भी बुद्धिमान आज यहाँ कोई उपस्थित होता तो सम्भव है कि वह आपका मत खण्डित कर देता। अतः आपकी बातों से हमारे हृदय का सन्देह पूर्ण रूप से दूर नहीं हो रहा है। आप महायोगी हैं, सिद्ध पुरुष हैं; भगवान अवश्य ही आपकी बातें सुनते हैं। यदि इस मन्दिर में स्थित भवानीपति आपकी प्रार्थना पर हमारे सामने साक्षात् प्रकट होकर अपने मुख से आपके मत की सत्यता स्वीकार करें, तो हमारा सारा सन्देह दूर हो जाएगा।"

सभा में उपस्थित सभी लोग ब्राह्मण की बुद्धिमत्ता पर चकित रह गये, उनका समर्थन करने लगे और शंकर इसका क्या उत्तर देते हैं यह सुनने के लिए उत्सुक होकर उनके मुख की ओर ताकते

रहे। शंकर ने कहा, "मैं विश्वनाथ की इच्छा से ही इस कार्य में प्रवृत्त हुआ हूँ। आप लोगों को अद्वैतपथ पर चलाना यदि उन्हें अभिप्रेत हुआ, तो वे अवश्य ही मेरे वाक्य का समर्थन करेंगे।" यह कहकर वे मन-ही-मन संस्कृत श्लोकों की रचना करके अपने मधुर कण्ठ से स्तोत्र-पाठ करने लगे। उनकी कवित्वमय भाषा में रचित भक्तिपूर्ण स्तुति से मन्दिर प्रतिध्वनित हो उठा और उस स्थान पर एक ऐसी गम्भीरता का वातावरण बना कि वहाँ उपस्थित सभी सिहर उठे, मन एक अज्ञात भावोच्छ्वास से परिपूर्ण हो उठा। सबकी दृष्टियाँ मूर्ति पर निबद्ध थीं, तीव्र आग्रह से मन एकाग्र थे। एक असम्भव घटना को देखने के लिए वे सभी उत्कण्ठित हो उठे। सहसा मन्दिर को आलोकित करते हुए श्वेतवर्ण द्विभुज त्रिशूलधारी व्याघ्रचर्म परिहित पिंगल जटायुक्त त्रिलोचन शिव आविर्भूत हुए। देखते-ही-देखते मानो स्वर्गराज्य का द्वार खुल गया, क्षण भर के लिए मानो सबके ज्ञाननेत्र उन्मीलित हो गये, विमल आनन्द से सबका हृदय परिपूर्ण हो उठा, उस प्रेममय मूर्ति के अतिरिक्त और भी कुछ है अथवा नहीं—यह बात लोगों के मन में उदित भी नहीं हुई। महेश्वर ने अपना दाहिना हाथ उठाकर मधुर गम्भीर स्वर में कहा, "अद्वैत सत्य है, अद्वैत सत्य है," और अन्तर्धान हो गये। सब लोग समाधिस्थ के समान स्तम्भित रह गये। फिर क्षण भर बाद वे आनन्दपूर्वक जयध्वनि करने लगे। तदुपरान्त जलप्रवाह के समान जन प्रवाह आकर शंकर के चरणों में आ पड़ा।

क्रकच-दमन

दक्षिण भारत में बौद्ध प्रभाव अधिक न था, यापि वेदपाठ तथा वैदिक धर्माचार का ह्रास हो ने से उपासकों ने तरह तरह के अद्भुत मत एवं चार अपना लिये थे। बौद्ध संघ में धर्म का लोप जाने पर दल बढ़ाने के झोंक में लोग विभिन्न प्रकार के विकट साज-पोशाक का अनुगमन करने लगे थे। इन साज-सज्जाओं ने ही धर्म का स्थान ग्रहण कर लिया था। आम जनता चिरकाल से पोशाक के वैचित्र्य को ही धर्म का प्रधान अंग मानती रही है। शंकर अपने शिष्यों को साथ लिए इस पोशाकी धर्म में प्राणसंचार करते हुए भ्रमण करने लगे।

वामाचारी कापालिक आदि अनेकानेक पुरुष-नारी मिलकर मद्य-मांस खा-पीकर आमोद करने को ही धर्म मानते थे। अन्य किसी किसी धर्म में थोड़ी-बहुत सद्भावना होने पर भी वे लोग आमोद-प्रमोद को ही सबकुछ समझते थे। इनके दलाधिपतिगण सिद्धाई की प्राप्ति के लिए उत्कट तपस्या करते तथा अपने दल के स्वार्थसाधनार्थ हेतु बुरे उपायों का अवलम्बन करने में भी आगा-पीछा नहीं सोचते। इन लोगों का दमन करने में शंकर को बड़ा श्रम करना पड़ा था, क्योंकि अशिक्षित जनसमुदाय को प्रलोभन के द्वारा अपने दल में भर्ती करके ये लोग बड़े प्रभावशाली हो उठे थे।

विदर्भ प्रान्त के अधिकांश लोग उन दिनों भैरव-उपासक थे। शंकर के प्रचार के फलस्वरूप वहाँ के राजा तथा सम्भ्रान्त वर्ग ने वेदमार्ग को अपना लिया। इससे उन्हें प्रचार में बड़ी सुविधा मिली। पद्मपाद आदि संन्यासीगण ने सम्पूर्ण राज्य का भ्रमण कर अल्प काल में ही सबको वैदिक मतावलम्बी बना दिया।

कर्णाट राज्य कापालिकों का प्रधान केन्द्र था। उनके दलपति क्रकच के पास तरह-तरह की सिद्धियाँ थीं और उसका दल ऐसा प्रबल था कि वह देश के राजा तक की परवाह नहीं करता था। कर्णाट के राजा सुधन्वा पहले बौद्ध धर्म का परित्याग कर कुमारिल के अनुगामी हुए थे और अब

शंकर की महिमा सुन धर्म-पिपासा से व्याकुल होकर उन्हीं का शिष्यत्व स्वीकार किया। विदर्भ विजय के बाद शंकर की कर्णाट राज्य में जाने की इच्छा थी। विदर्भ राज को जब इसका पता चला तो वे अपने गुरुदेव को मना करते हुए बोले कि उस राज्य में क्रकच का बड़ा प्रभाव और उसके पास तरह-तरह की सिद्धियां है; वह निरीह संन्यासी दल का बड़ा अनिष्ट कर सकता है; फिर आचार्यदेव जैसे भोले भाले हैं, अतः उग्रभैरव के समान कोई असत् व्यक्ति पुनः उनके अनिष्ट का प्रयास कर सकता है। कर्णाट के राजा अपने गुरु-देव की इच्छा जानकर बड़े आग्रहपूर्वक उन्हें अपने राज्य में ले गये तथा स्वयं अपनी सेना के साथ उनकी अंगरक्षा में लगे रहे।

आचार्यदेव के आगमन का संवाद पाकर क्रकच उन्हें अपने धर्म में दीक्षित करने को आया। उसके पूरे शरीर पर भस्म मला हुआ था, सिर पर लम्बी जटा थी, वस्त्र लाल रंग के थे, मद्यपान से उसकी दोनों आंखें लाल हो रही थीं, उसके एक हाथ में मनुष्य की खोपड़ी और दूसरे में एक त्रिशूल था। एक तो उसकी ऐसी वीभत्स मूर्ति थी, उस पर जब वह अपने घोर अश्लील असभ्य मत की व्याख्या करने लगा, तब शंकर के शिष्यों ने नाराज होकर उसे भगा दिया। क्रकच अपमानित होकर अपने मतवालों का दल लेकर युद्ध करने को आया। उन लोगों ने सम्भवतः सोचा था कि शास्त्र में तो जीत नहीं सकेंगे, शस्त्र उठाकर अन्तिम प्रयास करके देख लें। राजा सुधन्वा पहले से ही तैयार थे। उनकी प्रशिक्षित सेना के प्रतिकार करने पर कापालिकों ने घुटने टेक दिये। कहते हैं कि क्रकच ने अन्त में अपने इष्टदेव भैरव का स्मरण किया था। भैरव के आविर्भूत होने पर उसने उनसे आचार्यदेव का वध कर देने की प्रार्थना की। परन्तु शिवानुचर भैरव ने इस पर क्रुद्ध होकर उसी की भर्त्सना की; एक अन्य मतानुसार भैरव ने अपने त्रिशूल के आघात से क्रकच का सिर काट डाला। जो भी हुआ हो, क्रकच की मृत्यु अथवा पराजय के बाद उसके शिष्यों ने भय, विस्मय अथवा भक्ति के कारण शंकर के चरणों में आश्रय लिया।

अन्य अनेक अवैदिक मतावलम्बियों ने शंकर का ऐसा प्रभाव देख सहज ही वेद का मत स्वीकार कर लिया। राजा सुधन्वा अपने गुरु की देहरक्षा के लिए सैन्यदल को साथ लेकर आचार्यदेव के साथ-साथ भ्रमण करने लगे।

श्वोपासना-निवारण

मल्लपुर नामक स्थान में एक बड़ा ही अद्भुत् सम्प्रदाय था, जिसके अनुयायी कुत्तों की उपासना करते थे। वेद में एक जगह सर्वव्यापी भगवान के एक स्तव में "श्वभ्यो नमः, श्वपतिभ्यश्च वो नमः" कहकर उनकी स्तुति की गयी है। परन्तु ये लोग उस वेदवाक्य का गलत अर्थ लगाकर कुत्तों की पूजा किया करते थे। कुत्तों के समान आवाज निकालना और सर्वदा नृत्य-गीत करना उनके धर्म का प्रधान अंग था। ये लोग ब्राह्मण थे। शंकर के प्रचार के फलस्वरूप इनमें चेतना आयी। उनके शिष्यों ने इन लोगों के मस्तक मुण्डित करा कर दस सहस्र बार स्नान कराया, तदुपरांत उनके सिर में कीचड़ का लेप कर पुनः सौ बार स्नान, उसके बाद फिर सौ बार स्नान और प्रायश्चित के द्वारा उनके देह-मन शुद्ध करके ब्राह्मण के आचार की दीक्षा दी गयी।

धर्म-स्थापना

आचार्यदेव ने सोलह वर्ष तक सम्पूर्ण भारत का पैदल भ्रमण कर वैदिक धर्म का प्रचार किया। इस महादेश भारतवर्ष में उन दिनों कितनी भाषाएँ

कितने धर्म और कितने आचार प्रचलित थे, इसका वर्तमान अवस्था को देखकर ही अनुमान किया जा सकता है। प्रबल वायु जिस प्रकार आकाश के मेघदल को छिन्न-विछिन्न कर चारो ओर बिखरा देती है, उसी प्रकार कुमारिल और शंकर के द्वारा कुधर्म और विकृत धर्म को पराजित और विच्छिन्न कर देने के पश्चात् भारत-गगन में वेद-सूर्य का उदय हुआ था।

बौद्धधर्म की छाया में जो अपकर्म तथा धर्म शास्त्र-बहिर्भूत मत घास-पतवार की तरह फैल गये थे. कुमारिल द्वारा बौद्धधर्म के साथ ही वे भी विताड़ित होकर दूर-दराज के अंचलों में छिपकर आत्मरक्षा का प्रयास कर रहे थे। वामाचारी कापालिकों ने पूर्व सीमान्त के कामरूप से कर्नाटक को अपना केन्द्र बना रखा था। आचार्य देव ने उन सीमान्त प्रदेशों तक का दौरा कर मत प्रचारित किया था। उन्हें कितने मतों और सम्प्रदायों का सामना करना पड़ा उसका अत्यल्प ही हमें विदित हो सका है। जो कुछ विदित है उसका भी इस लघु पुस्तिका में विस्तार से वर्णन सम्भव नहीं।

भारत को संसार-सर्वस्वता के भाव से पूर्ण करने के लिए ही भगवान ने आचार्य देव को भेजा था। इसीलिए उनकी अदम्य शक्ति के सामने कुमत और दुराचार यहाँ से दूर हो गये।

●

मृत्यु जीवन का अंत नहीं

सुकरात को जहर दिये जाने की तैयारी चल रही थी। शिष्य, मित्र, सहयोगी, सम्बन्धी, सभी के नेत्र सजल हो उठे। प्राणों से प्रिय अपने मार्गदर्शक के बिछुड़न की वेदना असह्य हो रही थी। पर सुकरात पर इसका कोई प्रभाव नहीं था। उल्टे वे उस दिन और प्रफुल्ल थे। मृत्यु को गले लगाने की आतुरता सुकरात को देखते बनती थी। ऐसा लगता था कि किसी प्रिय-जन से मिलने की उत्सुकता हो। मित्रों ने शिष्यों ने इस आतुरता का कारण रोते हुए पूछा। सुकरात ने कहा, 'मैं मृत्यु का साक्षात्कार करना चाहता हूँ तथा यह जानना चाहता हूँ कि मृत्यु के बाद हमारा अस्तित्व रहता है या नहीं। मृत्यु जीवन का अन्त है अथवा एक सामान्य परिवर्तन-क्रम।'

सुकरात को निर्धारित समय पर विष दे दिया गया। सभी आत्मीय उन्हें घेरे हुए बैठे थे, नेत्रों से अश्रु की अविरल धारा बह रही थी। सुकरात ने कहा, 'मेरे घुटने में विष चढ़ गया है; पैरों ने काम करना बन्द कर दिया, वे मर चुके है पर मैं जीवित हूँ। मेरे अस्तित्व में थोड़ा भी अन्तर नहीं आया, मैं पूर्ण हूँ। देखो। मेरे हाथों ने, कमर ने, नेत्रों ने काम करना बन्द कर दिया, निर्जीव हो गये, किन्तु मैं ठीक पहले जैसा हूँ।

उपस्थित स्नेही, सहयोगी फूट-फूट कर रोने लगे। सुकरात ने उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा, 'देखो, तुम्हें जीवन की वास्तविकता को समझने का एक अलभ्य अवसर मिला है। एक व्यक्ति मृत्यु की प्रक्रिया से गुजर रहा है तथा तुम सबको संदेश दे रहा है कि मृत्यु जीवन का अन्त नहीं एक अविरल प्रवाह है।

—कृष्णेन्दु कुमार

देवलोक

—स्वामी अपूर्वानन्द
अनुवादक—स्वामी ज्ञानातीतानन्द
रामकृष्ण मिशन, राजकोट

हरि महाराज का दर्शन :

नीचे उतर कर पूजनीय हरि महाराज को खोजने पर उनके सेवक महाराज ने कहा कि संध्या के बाद उनका दर्शन होगा—इस समय नहीं। श्री श्री माँ का दर्शन मिला नहीं। उससे मन बहुत दुखित तथा भारी था—हरि महाराज का भी दर्शन नहीं मिला। अशांत मन से बागबाजार में मित्र के घर गया। थोड़े समय बाद गंगा स्नान कर गंगा तीर पर प्रार्थना कर एक काली मन्दिर का दर्शन कर खूब आनन्द हुआ। संध्या के बाद बलराम मन्दिर में घुसते ही दाहिनी तरफ पूजनीय हरि महाराज जिस घर में थे, उसके सामने ही सेवक महाराज से मुलाकात हुई। यद्यपि तब तक मैंने साधुओं को देखते ही प्रणाम करना चाहिये इस शिष्टाचार का अर्जन नहीं किया था और सेवक महाराज को भी प्रणाम नहीं किया। तब भी उन्होंने कुछ समय बाद दर्शन की व्यवस्था कर दी। जब तक दरवाजे के पास खड़ा था, पूजनीय हरि महारज धीमे स्वर में क्रांतिकारियों के सम्बन्ध में बातें कर रहे थे और जिनके साथ बातें कर रहे थे वे क्रांतिकारी थे। सेवक महाराज मुझ को जब घर के भीतर ले गये तब हरि महारज दीवाल के किनारे कुरसी पर बैठे थे और जमीन पर उनके पैर के पास जो दो सज्जन युवक बैठे थे. वे लोग उच्च कक्षा के छात्र मालूम पड़े। मुझको देखते ही युवकों ने कहा—'तो हम लोग जाते हैं, दूसरे किसी दिन आ कर आपके साथ बात करेंगे। यह कहकर प्रणाम करके वे लोग चले गये।

दिव्य कांति, वृद्ध यतिराज को देखकर मैं मुग्ध हो गया। भूमि पर सिर लगाकर पाद स्पर्श कर उनको प्रणाम किया। उनके फूले हुए दोनों पैर एक गुलाबी रंग के कुशन पर रखे हुए थे। मेरे महापुरुष महाज का परिचय दे कर बेलूरमठ से आया हूँ, ऐसा कहते ही प्रसन्न हो कर मेरी तरफ देखते हुए पास की छोटी बेंच पर बैठने के लिए कहा। मैं ठीक उनके सामने मुख करके बैठा। उनकी दृष्टि में मानो एक सम्मोहिनी शक्ति थी। उन्होंने पहले ही मेरे मुख की तरफ देखते हुए जिज्ञासा की 'तुम किसी गुप्त राजद्रोही दल से सम्बन्धित हो?' इस प्रश्न के लिए मैं बिल्कुल प्रस्तुत नहीं था। मेरे मन के ऊपर एक विद्युत की तरह एक विचार तरंग कौंध गयी। सही बात कहूँगा कि झूठ बात कहूँगा। साथ-ही-साथ याद आया कि ये श्री रामकृष्णदेव के अन्तरंग पार्षद संन्यासी—ये निश्चय ही मेरे जीवन और समिति की कोई हानि नहीं करेंगे। यह विचार मेरे मन में आते ही मैंने सिर नीचे कर के कहा : 'महाराज मैं एक राजद्रोही गुप्त समिति का एक सदस्य हूँ।' वे मेरे उत्तर से प्रसन्न हुए। और प्रश्न मुख से मुझसे 'तुम लोगों की समिति के नियमानुसार अपना या समिति का गुप्त परिचय देना निषेध है। तो तुमने मेरे पास अपना परिचय क्यों दिया? मैंने कहा : 'समिति का यह नियम जो है वह आत्मरक्षा के लिए है। गुप्त समिति की यह प्रतिज्ञा समिति के कार्यकलाप और सदस्यों के परिचय गुप्त रखने के लिए है और इस प्रतिज्ञा को सदस्य लोग प्राण दे कर भी पालन करते हैं, किन्तु मैंने एक ऐसे व्यक्ति के पास इस प्रतिज्ञा को भंग किया है, जो कि इस समिति एवम् मेरे जीवन की कोई भी हानि नहीं करेंगे? इसके अतिरिक्त श्रीरामकृष्णदेव के संन्यासी पार्षद के पास इस साधारण जीवन को

बचाने के लिए मिथ्या बोलने की मेरी इच्छा नहीं हुई, इसका चाहे जो परिणाम हो।' वे मेरी बात से खूब प्रसन्न होकर मुझे स्नेह से अपने और पास बेंच पर बिठा कर और नाना प्रकार की बातें करने लगे। श्री श्री माँ का दर्शन नहीं मिला इससे स्वयम् को अयोग्य मान कर मन खूब खराब था। उस बात के उत्तर में उन्होंने ममतापूर्ण स्वर में कहा: 'श्री श्री माँ साक्षात जगन्माता, उनका दर्शन क्या आसान बात है ? उन्होंने तुम्हारे अन्दर की व्याकुलता वढ़ाने के लिए आज दर्शन नहीं दिया। बाद में उनका दर्शन मिलेगा। उसके लिए दुख मत करो। तुम्हारे मन में उनका अभाव बोध बढ़ने पर निश्चित समय में तुमको दर्शन देंगी। खूब रो-रो कर प्रार्थना करो। वे प्रसन्न हो कर अवश्य ही समय होने पर दर्शन देंगी।' इस तरह से बहुत सांत्वना दी। श्री श्री माँ का दर्शन पाने के लिए इतनी बातें हैं, इतनी तैयारी का प्रयोजन है, ऐसी मेरी धारणा नहीं थी। उनकी बातों से मन शांत हुआ। मैं उनके पास में ही बेंच पर बैठा था। उन्होंने कुछ समय बाद कहा: 'तुम्हारा हाथ देखूं।' मैंने सोचा था कि वे ज्योतिषियों की तरह हाथ की रेखाएँ देखेंगे—इसलिये मैंने उनके सामने हाथ बढ़ा दिया, किन्तु उन्होने मेरे दाहिने हाथ को और पास खींच कर अपने दाहिने हाथ पर रख कर 'तुम्हारे हाथ का वजन देख रहा हूँ' ऐसा कह कर मानो वे मेरे दाहिने हाथ का बार-बार वजन करने लगे। उनके स्पर्श से मेरे मन में विशेष भावान्तर हुआ और आनन्द हो रहा था। वे थोड़े समय तक मेरे हाथ का वजन देख कर बोले: 'तुम्हारा होगा, हाथ भारी नहीं है। हम लोग हाथ का वजन देखकर समझ जाते हैं कि कौन कैसा आदमी है—ठाकुर ने हम लोगों को सब सिखा दिया था।' मैं और क्या उत्तर देता, कुछ भी समझ नहीं पाया था। केवल आवाक् हो कर उनकी सहानुभूतिपूर्ण बातों को सुन रहा था। ठीक उसी समय सेवक महाराज ने घर में घुस कर एक हरी बत्ती जला दी और सफेद प्रकाश को बुझा दिया। उन्होंने साथ ही साथ होंठों पर अंगुली रख कर कहा: 'मुझे और बातें करने से मना किया तथा जाने के लिये कहा।' मैंने उनको भूमिष्ठ हो कर प्रणाम किया तथा घर से चला आया।

दूसरे दिन प्रातः काल गंगा स्नानादि करके श्री श्री माँ के दर्शन के लिए गया, किन्तु उनका दर्शन हुआ नहीं। साधु महाराज ने कहा कि, उस दिन प्रातःकाल विशेष कारण से पुरुष भक्तों को दर्शन नहीं हुआ। दूसरे दिन प्रातःकाल आने के लिए कहा। पूज्य सारदानन्द महाराज का दर्शन भी उतने सबेरे नहीं होगा, क्योंकि तब वे ध्यान कर रहे थे। पूज्यनीय राजा महाराज और हरि महाराज का दर्शन करने के लिए बलराम मन्दिर गया। पहले राजा महाराज के दर्शन के लिए दूसरी मंजिल पर गया। एक सेवक महाराज दिखाई पड़े। उन्होंने कहा कि, राजा महाराज का शरीर ठीक नहीं है—दर्शन नहीं होगा। पहले दिन जिस स्थान पर दर्शन किया उस स्थान को प्रणाम किया, बाद में पास के बड़े कमरे में जहां पर ठाकुर ने भक्तों के साथ अनेक लीलाएं की थीं, उसी कमरे में प्रवेश कर ठाकुर को प्रणाम किया। बलराम मन्दिर मुझे महापुण्य स्थान मालूम पड़ा। श्री भगवान का अपूर्व लीला क्षेत्र ! खूब अभिभूत चित्त से हरि महाराज के दर्शन को गया—वह भी नहीं हुआ। सेवक महाराज ने कहा संध्या को दर्शन हो सकता है। अशांत मन से विभिन्न मन्दिरों के दर्शन करके चला आया—घूम-घूम कर विभिन्न मन्दिरों के दर्शन करने से मन बहुत शांत हुआ।

(क्रमशः)

शंकर चरित्र

—इन्द्रदयाल भट्टाचार्य
अनुवादक—स्वामी विदेहात्मानन्द
रामकृष्ण मिशन, रायपुर (म०प्र०)

एक दिन गिरि नामक एक शान्त-शिष्ट ब्राह्मण ने आकर शंकर का शिष्यत्व ग्रहण किया। आते ही उन्होंने गुरुसेवा का पूरा भार अपने कन्धों पर ले लिया ताकि अन्य गुरु भाइयों को साधन-भजन तथा अध्ययन का अवसर मिले। गिरि सर्वदा ही गुरु के लिए आवश्यक वस्तुओं के संग्रह, स्नान के समय उनके वस्त्र ले जाने और उनारे वस्त्र को धोने व सुखाने आदि कार्यों में लगे रहते थे। वे बातें नहीं करते, पर छाया के समान गुरु के साथ-साथ रहते, मानो गुरुसेवा के लिए ही उन्होंने जीवन-धारण किया हो। शास्त्रों के प्रति उनमें कुछ विशेष रुझान नहीं दीख पड़ता था।

शंकर के शिष्यगण उन दिनों जी-जान से शास्त्र अध्ययन तथा साधना में लगे हुए थे। मठ में ज्ञानचर्चा तथा ध्यान-धारण का मानो एक प्रबल स्रोत बह रहा था। परन्तु गिरि इन सबसे उदासीन, गुरु की सेवा में ही निरत रहते। अतः ज्ञानाभिमानी गुरुभ्रातागण उन्हें थोड़ी अवज्ञा की दृष्टि से ही देखा करते थे। उन लोगों का मनोभाव कुछ इस तरह का था, "गिरि तो मूर्ख है; वह और कर ही क्या सकता है? शारीरिक परिश्रम करके गुरु की थोड़ी-बहुत सेवा के अतिरिक्त उसके लिए करणीय है भी क्या?"

एक दिन शिष्यों के वेदान्त-पाठ के लिए प्रस्तुत होने पर शंकर ने कहा, "तुम लोग थोड़ी प्रतीक्षा करो। गिरि नदी पर कपड़े धोने गया है, उसके आने पर पाठ आरम्भ होगा।" शिष्यों में से कोई तो इस बात पर नाराज हुए और किसी-किसी ने मुँह खोलकर गिरि के बारे में कुछ अवज्ञासूचक टिप्पणियाँ भी कर दीं। गुरुभक्ति तथा गुरुसेवा—ज्ञानप्राप्ति का एक प्रधान साधन है; परन्तु आचार्य को यह देखकर खेद हुआ कि ये लोग वेद-वेदांग में पारंगत तपस्वी होकर भी अहंकार में ऐसे मत्त हैं कि गुरुसेवा की ही अवज्ञा कर रहे हैं। वे बिना कुछ कहे स्थिर बैठे रहे और मन ही मन उन्होंने गिरि को ब्रह्मविद्या प्रदान कर दी। गिरि नदी से कपड़े धोकर लौट रहे थे। सहसा उन्हें अनुभव हुआ मानो उनकी अनुभवशक्ति के ऊपर से एक आवरण उतर गया हो और उन्हें सम्पूर्ण जगत् चैतन्यमय बोध होने लगा। गुरुकृपा से क्षण भर में ही उन्हें सर्व शास्त्रों का सार विदित हो गया और समस्त साधनाओं के फल की उपलब्धि हो गयी। उनका मुखमण्डल ब्रह्मतेज से उद्भासित हो उठा। वे आचार्य के समीप पहुँचे और वेदांत का सारमर्म अभिबोधक कुछ श्लोकों को तोटक छन्द में मन ही मन रचना कर उनकी आवृत्ति करने लगे। गुरुभ्रातागण अवाक् रह गये। उन लोगों का अहंकार चूर्ण हो गया। तब से गुरुसेवा-परायण गिरि का नाम हुआ—तोटकाचार्य।

अंतरंगों से मिलन

अब उनकी लीला के सहायक सभी अन्तरंग शिष्य उनके पास आ जुटे थे। पद्मपाद, सुरेश्वर, हस्तामलक, तोटकाचार्य, समित्पाणि, चिद्विलास

रहे थे। बेलूर मठ के घाट पर ही मुझको उतार दिया। गंगा में हाथ-पैर तथा मुँह धो कर ठाकुर को प्रणाम करने गया। एक साधु महाराज ने सस्नेह पूछा : 'इतने दिन कहाँ थे ?' संक्षेप में उनको उत्तर दे कर मंदिर गया। तब भोग निवेदन हो रहा था, दरवाजा बंद। प्रणाम करके चरणामृत ग्रहण करके और चंदन का टीका लगा कर उतर करके महापुरुषजी के दर्शन के लिए गया। वे अपने घर में बैठे हुए चिट्ठी पत्र लिख रहे थे। प्रणाम कर के सब वृतान्त सुनाया। उन्होंने प्रसन्न हो कर कहा : 'तुम्हारा भाग्य अच्छा है, नहीं तो सब ऐसा योगायोग होना ! श्री श्री माँ का दर्शन किया है— उन्होंने तुम्हारे साथ बात की—आशीर्वाद दिया—यह क्या साधारण बात है ! तुम्हारा मंगल होगा—मैं बोलता हूँ—खूब मंगल होगा। ठाकुर तुम्हारे ऊपर कृपा करेंगे। जाओ और सबके साथ मिल लो—प्रसाद पाने की बात कहो।

प्रसाद पाने के बाद महापुरुष महाराज नीचे के बरामदे में बेंच पर बैठ गये। वे तम्बाकू पी रहे थे, मठ के अनेक साधु महाराज उनको घेर कर खड़े थे। दो एक बात करने से बाद उन्होंने मुझसे राजा महाराज की बात पूछी। मैंने प्रथम दिन उनका दर्शन पाया था, दूसरे दिन उनका शरीर उतना अच्छा नहीं था। उनका दर्शन नहीं मिला यह बताने पर वे बोले : 'मैंने भी सुना है उनका पेट थोड़ा खराब हुआ है।' एक साधु को लक्ष्य करके बोले : 'तुम, महाराज कैसे हैं यह खबर ले कर आओ तो।' महाराज के लिए महापुरुष जी की उत्कण्ठा मेरे अंतर को छू गयी। उनका आपस में कितना प्रेम और गंभीर आकर्षण है !

शाम को महापुरुष जी को देखा—शाकउद्यान में कार्यरत साधुओं के पास खड़े हो कर कामकाज संबंधी निर्देश दे रहे थे और स्वयं अपने हाथ से कुछ सब्जी तोड़ कर मठ में ले आये। सायंक जगह-जगह पर लालटेन जला दी गयी। धूप-धू दिया गया, शंख बजाया गया। आरती का घ बजते ही सब साधुगण मंदिर में एकत्र हो महापुरुष जी भी यथा समय आकर बैठ गये मंदिर के अन्दर दरवाजे के पास। आरती आ होते ही कांसर और घंटे के मधुर शब्द ने गंभ परिवेश की सृष्टि की, सभी साधु लोग हुए—हाथ जोड़ कर आरती का दर्शन किय स्तोत्र आदि गान होने के बाद अनेक लोग मं के बरामदे में और पास के ध्यान घर में ध्यान- में मग्न हो गये। मैं भी बरामदे में चुपचाप बै हुआ था।

'श्रीरामकृष्ण का नाम ही महामन्त्र'

तब जप-ध्यान किस प्रकार करना चाहि जानता नहीं था। इसीलिए दूसरे दिन सभी साथ महापुरुष जी को प्रणाम करके जपध्यान कि प्रकार करना होगा विनीत भाव से पूछने प महापुरुष जी ने सस्नेह कहा : 'प्रेम के साथ बा म्बार भगवान का नाम लेना ही जप है। ठाकुर जीवन्त जागृत देवता हैं - इस युग में "श्रीरामकृष्ण नाम ही महामन्त्र है। मन-ही-मन में "रामकृष्ण नाम जप करना, और खूब व्याकुल हो कर प्रार्थन करना। कहना, प्रभु आपने जगत के उद्धार के लिए नर देह धारण कर कितना कष्ट उठाया है मैं अत्यन्त दीन-हीन, भजनहीन, पूजनहीन, ज्ञानही भक्तिहीन, प्रेमहीन, विश्वासहीन, दया करके मे हृदय में प्रकाशित होइये। मेरा मानव जीव सार्थक हो। आपको ही एक सन्तान ने आपके पास इस प्रकार से प्रार्थना करना सिखाया है। आप मेरे ऊपर कृपा करिये—इस प्रकार से प्रार्थना करते करते उनकी कृपा होगी। क्रम से मन स्थिर हो जायेगा। जप-ध्यान में मन लगेगा, अंतर में आनन्द और प्रेम अनुभव करोगे। प्राण में आशा

का संचार होगा। खूब प्रार्थना करके, बाद में जिस-जिस प्रकार से बतलाया है उसी प्रकार से जप करना। ठाकुर के पवित्र नाम में इतनी शक्ति है कि, यही नाम जपते-जपते क्रमशः ध्यान अपने आप ही होगा। जप के समय खूब एकाग्रचित्त हो कर चिन्तन करना कि, वे प्रसन्न दृष्टि से तुम्हारी तरफ देख रहे हैं। यही चिंतन दीर्घ समय तक स्थायी होने पर एक प्रकार का ध्यान है। तुम उनका नाम जपते-जपते प्रार्थना करना—प्रभु मेरा ध्यान जिससे हो वैसा ही कर दो। वे ही कर देंगे, निश्चय जानो। वे सबके गुरु, पथ प्रदर्शक, प्रभु, पिता, माता, सखा, भ्राता हैं। जिस किसी प्रकार प्रेम के साथ उनकी श्री मूर्ति या उनके गुणों का चिंतन करना ही ध्यान है। ध्यान की अनेक अवस्थाएँ हैं, बहुत प्रकार के ध्यान हैं। खूब व्याकुल होकर के पुकारो—खूब रोओ! रोते-रोते हृदय की मलिनता धुल जायेगी—और वे प्रकट होंगे। यह सब एक दिन में नहीं होगा। करते जाओ, पुकारते जाओ - निश्चय ही उत्तर मिलेगा—आनन्द मिलेगा। इस युग में "रामकृष्ण" नाम ही महामन्त्र है। केवल "रामकृष्ण" नाम—उसमें 'ओंकार' या अन्य कोई बीजमन्त्र जोड़ने का भी कोई प्रयोजन नहीं है।

महापुरुष जी के आदेश से दक्षिणेश्वर में :

इस प्रकार ध्यान-जप के सम्बन्ध में उस दिन उन्होंने अनेक उपदेश दिये थे। सभी लोग मुग्ध हो कर उनकी बात सुन रहे थे। कुछ समय बाद ही भक्तों का एक दल महापुरुष जी के पास आया, वे लोग नौका से दक्षिणेश्वर जा रहे थे। उन्होंने मुझको भी उन लोगों के साथ दक्षिणेश्वर के दर्शन करने के लिए जाने को कहा। मैंने भी उनके साथ नौका में यात्रा की। महापुरुष जी की दया की बात मन को विशेष रूप से आलोकित कर रही थी। आहा! उनका कितना स्नेह; कितनी दया! मेरे धर्मपथ की सब व्यवस्था वे स्वतः ही कर रहे थे। दक्षिणेश्वर का दर्शन मेरे जीवन का स्वप्न था। यही प्रथम बेलुड़मठ और दक्षिणेश्वर का दर्शन। भक्तों के साथ जल्दी-जल्दी दक्षिणेश्वर के सभी स्थानों को देखा। पहले ही भवतारिणी का मन्दिर, राधाकान्त का मन्दिर, द्वादश शिव मंदिर, ठाकुर का घर, पंचवटी और बेलतला आदि स्थानों का दर्शन किया। उसके बाद ठाकुर घर में कुछ देर बैठ कर खूब आनन्द हुआ। मालूम होता था कि ठाकुर छोटे तख्त पर बैठे हैं—सभी को आशीर्वाद कर रहे हैं। पंचवटी में प्रणाम कर धूलि को पूरे शरीर में लगाने से खूब आनन्द हुआ। चलने के पूर्व और एक बार माँ काली को प्रणाम कर तृप्ति लाभ किया। माँ काली प्रसन्न मूर्ति में विराजमान थीं।

हिन्दू लोग अतीत का जितना ही अध्ययन करेंगे, उनका भविष्य उतना ही उज्ज्वल होगा।

—स्वामी विवेकानन्द

बैद्यनाथ च्यवनप्राश

अब पोलीजार में उपलब्ध

स्फूर्ति

यौवन

विकास

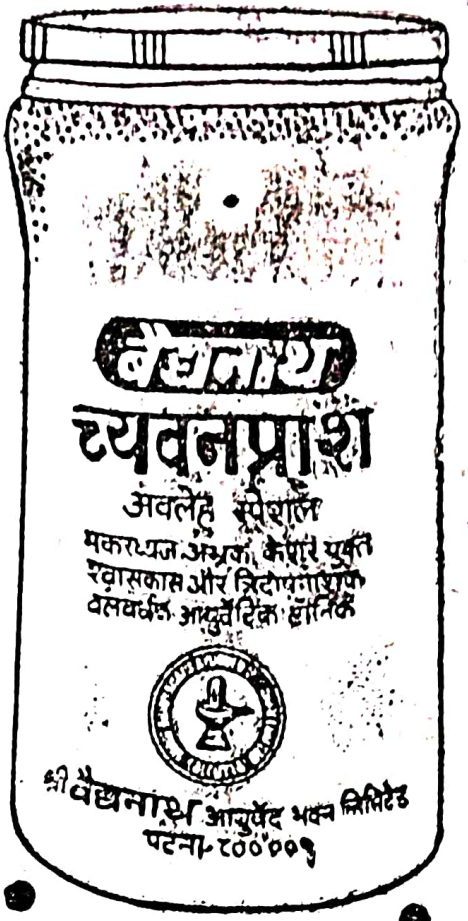

कफ श्वांस नाशक

दिमागी ताजगी

बलवर्द्धक

आदर्श आयुर्वेदिक पारिवारिक टानिक

कहीं आपके डिब्बे में "मोपेड" तो नहीं ?

प्रत्येक एक किलो स्पेशल और साधारण एवं ५०० ग्राम स्पेशल च्यवनप्राश के डिब्बे में इनामी कूपन प्राप्त कर "मोपेड" एवं ३०५ अन्य पुरस्कार प्राप्त करने का सुनहरा अवसर ।

वैद्यनाथ ७०० से अधिक दवाएं पांच आधुनिक कारखानों में तैयार करता है

श्री **बैद्यनाथ** आयुर्वेद भवन लिमिटेड

बैद्यनाथ भवन रोड, पटना-१